सोमसी

अप्रैल '91

हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी

हिमाचल अकादमी की योजनाओं के अंतर्गत आमंत्रित प्रविष्टियां

अकादमी की निम्नलिखित स्वीकृत योजनाओं के अन्तर्गत हिमाचल के स्थायी निवासी आवेदकों से दिनांक 31 जनवरी, 1992 से पूर्व प्रविष्टियां आमन्त्रित की जाती हैं :—

1. अधिछात्रवृत्ति तथा परियोजना अनुदान

इस योजना के अन्तर्गत साहित्य, संस्कृति, कला, वास्तुकला, चित्रकला, पुरातत्व, अभिलेख, शिल्प तथा संग्रहालय से सम्बन्धित विषयों पर एक हजार रुपये प्रति मास की दर से दो वर्ष की अवधि के लिए अधिछात्रवृत्तियां/परियोजना अनुदान स्वीकृत किया जाता है। प्रार्थना पत्र निर्धारित प्रपत्र पर प्राप्त किए जाएंगे। अधिछात्रवृत्ति के लिए एम. ए. या समकक्ष योग्यता आवश्यक है।

2. पुस्तकों की थोक खरीद/साहित्य पुरस्कार योजना

प्रदेश के साहित्यकारों द्वारा लिखित तथा गत तीन वर्ष की अवधि में प्रकाशित पुस्तकों की रुपए 4000/- (रुपए चार हजार मात्र) के मूल्य तक की थोक खरीद अकादमी द्वारा की जाती है। इस योजना के अन्तर्गत पुस्तक की दो प्रतियां निःशुल्क रूप से प्रार्थनापत्र के साथ संलग्न की जाएंगी। यदि दूसरी योजना साहित्य पुरस्कार के अन्तर्गत भी पुस्तक को विचारित किया जाना अपेक्षित हो तो उसकी चार प्रतियां लेखक के हिमाचल के स्थायी निवासी होने के प्रमाणपत्र सहित इस योजना के अन्तर्गत निःशुल्क प्राप्त की जाएंगी। प्रदेश के बाहर के साहित्यकारों/शोधकर्ताओं द्वारा लिखित

(शेष आवरण पृ० 3 प

वर्ष 17
अंक 2
पूर्णांक 66
अप्रैल, 1991

सोमसी

पर्वतीय कला, संस्कृति व साहित्य की
त्रैमासिक शोध पत्रिका

सम्पादक
डॉ. बंशीराम शर्मा

संयुक्त सम्पादक
सरोज सांख्यायन

उपसम्पादक
कु० जयवन्ती चौहान

प्रकाशन सहयोग
डॉ० कर्म सिंह

प्रूफशोधक
निर्मल कौशल

प्रकाशक सचिव
हिमाचल कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी
शिमला-171003

मूल्य : 3/- रुपये एक प्रति
12/- रुपये वार्षिक

इस पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में दिए गए तथ्यों से सम्पादक
की सहमति आवश्यक नहीं है।

विषय सूची

क्रमांक	लेख	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय		
2.	देओ थनाली	ज्वाला प्रकाश चेतन	1
3.	डोमेश्वर देवता	आचार्य रामानन्द शास्त्री	16
4.	देव करूगण-एक परिचय	दुर्गादत्त शर्मा	27
5.	जंजैहली बैऊड़ का नारायण देव	नन्द लाल	38
6.	त्रिदेव	जया चौहान	52
7.	कथालू देवता	भवानी सिंह	56
8.	गसौता महादेव	डॉ० वेद प्रकाश 'अग्नि'	69
9.	नलग क्षेत्र का इष्ट-देव जीजड़	सतीश	72
10.	सरपारा का जल देवता	आत्मा राम केदारटा	79
11.	अकादमी की साहित्यिक तथा सांस्कृतिक एवं अन्य गतिविधियां		89
12.	पठनीय एवं संग्रहणीय पुस्तकें		92
13.	फार्म-4		98

सम्पादकीय

सोमसी का यह अंक मन्दिरों से सम्बन्धित है। इसमें देओ थनाली, डोमेश्वर देवता, देव कुरुगण, नारायण देव, क्यालू देवता आदि कतिपय ऐसे लोक देवताओं पर महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की गई है जो अपने क्षेत्रों से बाहर कम ही जाने जाते हैं परन्तु अनुष्ठानों तथा दिव्य शक्तियों के लिए सीमित क्षेत्रों में सुपरिचित हैं।

हिमालय क्षेत्र के उत्तरांचल तथा पश्चिमी हिमालय के इस भाग में ग्राम देवी देवताओं की पूजा अर्चना हमारे देश के सांस्कृतिक इतिहास की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। दक्षिणी भारत के कतिपय प्रदेशों यथा गोआ, तमिलनाडु तथा कर्नाटक आदि में भी ग्राम देवों तथा अन्य आत्माओं की पूजा पद्धति विद्यमान रही है परन्तु इस परम्परा का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने की दिशा में प्रयास नहीं हुए हैं। मोहनजोदड़ो व हड़प्पा की प्राचीन सभ्यता की खुदाई में देवी तथा कतिपय अन्य देवताओं की मूर्तियां मिलने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस काल में भी मानव दिव्य आत्माओं में विश्वास रख कर उनके मूर्त रूपों की पूजा किया करता था। हिमाचल प्रदेश के मध्यवर्ती तथा उच्च हिमालयी क्षेत्रों में ग्राम देवताओं की विशिष्ट पूजा पद्धति प्रचलित है। इसके अन्तर्गत ग्राम देवता का मन्दिर गांव के साथ ऊंचे स्थान पर अथवा गांव के मध्य स्थित रहता है और उसका निर्माण अन्य घरों की अपेक्षा विशाल आकार तथा विशिष्ट शैली में किया गया होता है। प्रदेश में उपलब्ध मन्दिरों को विभिन्न शैलियों यथा ढलवां छत शिखर शैली, पहाड़ी अथवा स्थानीय शैली, पैगोडा, पिरामिड, झालरयुक्त, मण्डप शैली, गर्भ-गृह प्रकार आदि में विभाजित करके अध्ययन किया जा सकता है। मन्दिरों में देवताओं के चेहरों (धातु मूर्तियों), जिन्हें मुख, मुखौटा, मूहरा, मोहरा, मुखङ् आदि कहा जाता है के भी विभिन्न

प्रकार हैं तथा देवता की शक्ति किसी व्यक्ति विशेष पर समय-समय पर आरोपित होती है जिसे गूर, माली, ग्रोक्च, चेला, देवांह आदि कहा जाता है। यही देव प्रतिनिधि देवता की इच्छा अपनी अथवा देवता की भाषा में लोगों तक पहुंचाता है। गांवों में प्रचलित देवरथों के भी अलग-अलग प्रकार हैं। ग्राम देवताओं को अलग वर्गों में बांट कर उनके परिवार, सगे सम्बन्धियों तथा उपासकों व त्योहार-उत्सवों आदि का अध्ययन इस क्षेत्र की प्राचीन लोक संस्कृति के अध्ययन के लिए उपयोगी है। महा-भारत काल के अनेक वीर पुरुष तथा उक्त महापुराण में वर्णित ऋषिमुनि वर्तमान समय में इस क्षेत्र के ग्राम देवताओं के रूप में प्रतिष्ठित हैं। सारांश यह है कि देवी-देवताओं पर सांस्कृतिक दृष्टि से स्वतन्त्र रूप से अध्ययन की निरन्तर आवश्यकता है। पत्रिका के प्रस्तुत अंक के माध्यम से इस विषय से सम्बन्धित शोधपरक सामग्री प्रस्तुत करना हमारा उद्देश्य है।

पत्रिका का कलेवर अपेक्षाकृत कम होने तथा प्रूफों की अशुद्धिओं के कारण जो कमियां इस अंक में दृष्टिगोचर होती हैं, हम उनके लिए अपने विज्ञ पाठकों से क्षमा याचना करते हैं। प्रस्तुत विषयक शेष सामग्री को पत्रिका के अगले अंकों में प्रस्तुत किया जाएगा।

डॉ. बंशीराम शर्मा

देओ थनाली

ज्वाला प्रकाश चेतन

जिस धरा का कण-कण दैवी सत्ता से परिप्लावित हो उसके विषय में अधिक वर्णन करना सूर्य को दीपक दिखाने के समान ही है।

जहां गर्वोन्नत शिखर तथा पुष्पित घाटियां गम्भीर, मनोरम प्रकृति नटी का विस्तार, सुन्दर वन पक्षियों तथा मृगों का आगार, पर्वतीय सुन्दरियों के ग्राम्य गीतों की पुकार तथा नृत्य की झंकार सदैव धरा का शृंगार करती हो वहां क्यों नहीं देवता रमण करेंगे ? यहां पर प्राचीन समय में देवता से लेकर ऋषि मुनियों तक तथा यक्ष, गन्धर्व राक्षस, किन्नर, नाग आदि जातियां रमण करती रही हैं। यही कारण है कि इस हिम-आंचल की धरा का प्रत्येक कण देवमय बन चुका है।

मूल मन्दिर :- 'थनाली देव' का मूल मन्दिर थनाली नामक एक बहुत ही सुन्दर गांव के बीचोबीच स्थित है। मन्दिर के चारों ओर गांव के निवासियों के घर बने हुए हैं। गांव का धरातल ढलानदार है तथा सीढ़ीनुमा खेत बरबस ही मन को मोह लेते हैं। गांव के दोनों ओर गहरे पहाड़ी नाले बहते हैं जो गांव को स्वादिष्ट तथा औषधिमय जल प्रदान करते हैं। गांव की जनसंख्या लगभग 250 है तथा शान्त वातावरण है।

गांव की समुद्र तल से ऊंचाई लगभग 9000 फुट है। छायादार स्थल होने के कारण बर्फ एक दो-मास तक जमी रहती है। गांव के साथ ही ऊपर की ओर देवदार के घने

जंगल हैं, जो इस को और भी सुरम्य बनाते हैं। गांव के आस-पास जंगली औषधियां तथा जड़ी-बूटियां भी पाई जाती हैं। गांव के लोग ईमानदार तथा परिश्रमी हैं। गांव में अधिकतर राजपूत (ठाकुर) ही बसते हैं। ब्राह्मण तथा हरिजन पृथक बस्तियों में निवास करते हैं। ग्रीष्म ऋतु में यह स्थान और भी रमणीक बन जाता है। स्थान स्वास्थ्यवर्धक है। लोग कृषि पर आजीविका चलाते हैं। यहां पर सेबों के सुन्दर बगीचे भी हैं।

देओ थनाली की मान्यता :- देओ थनाली की मान्यता आस-पास के लगभग 50 गांवों में हैं। यूं तो श्रद्धालु लोग दूर-दूर से आकर यहां अपनी श्रद्धा के पुष्प अर्पित करते हैं परन्तु इस क्षेत्र के लोग तो अपना जीवन देवता पर ही आश्रित समझते हैं। यहां के आस्थावान लोग हर बीमारी में लड़ाई, झगड़े के निपटारे में तथा शुभ मुहूर्त तथा शकुन के लिए देवता की मान्यता करते हैं तभी सम्पूर्ण गांव शान्ति में रहता है। सभी एक दूसरे से अच्छा व्यवहार करते हैं। उनका मत है कि यदि वे किसी से दुर्व्यवहार करेंगे तो देवता उनसे रुष्ट हो जायेगा। उन्हें घोर दण्ड देगा। यही कारण है कि लोग दूसरों के खेत पर चलते भी नहीं हैं।

मन्दिर का आकार प्रकार :- थनाली नामक गांव में दो मन्दिर हैं एक मन्दिर में शिवलिंग है यह मन्दिर 'पाण्डव शैली' में निर्मित है। मन्दिर के दो भाग हैं- एक 'गम्भीरी' जिसमें शिवलिंग तथा अन्य दो प्रस्तर प्रतिमायें हैं। दूसरे भाग 'ओंआन' के बीच में हवन कुण्ड तथा दोनों ओर स्तम्भों के साथ जड़ी अन्य सहयोगी देवताओं की छोटी मूर्तियां 'कड़ोले' तथा छोटे त्रिशूल हैं। उस मन्दिर में मूल मूर्ति शिवलिंग है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रस्तर प्रतिमायें भी हैं। मूर्तियों की पहचान नहीं की जा सकती है। प्रथम मूर्ति 12x10 इंच और दूसरी मूर्ति 7x10 इंच है। आकृतियां बहुत सुन्दर हैं। मुख्य द्वार के साथ एक छोटा "बैल बच्छा" भी पत्थर का ही है। मन्दिर चार मंजिल का है। कारदारों का कथन है कि इसकी एक मंजिल भूमिगत भी है। मन्दिर के निर्माण में 'पाण्डव' तथा 'शरण ग्रह शैली' अपनाई गई है। मन्दिर

का गुम्बद 'छत्तरी धारी' है जो दूर से बहुत ही सुन्दर लगता है। मन्दिर निर्माण में लकड़ियों का ही अधिक प्रयोग हुआ है। बहुत प्राचीन होने के कारण लकड़ियां सड़ने तथा फटने जा रही हैं। इन पर सुन्दर काष्ठकला के नमूने अंकित किये गए हैं। परन्तु लापरवाही के कारण सारी काष्ठ कला विगलित होती जा रही है। इस मन्दिर से लगभग 500 कदम आगे चलने पर एक अन्य विशाल मन्दिर है। यह मन्दिर भी पांच मंजिल का है परन्तु इसका आकार "कोठी शैली" का है। अंतिम पांचवी मंजिल पर देओ का सिंहासन विशाल 'पिढ़ू' के आकार का है।

'पिढ़ू' देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक छोटा सा सुन्दर मन्दिर ही हो। इस पर भी काष्ठ कला का कमाल देखते ही बनता है। इस पिढ़ू के ऊपर कहीं-कहीं चान्दी की परतें भी चसपान की गई हैं- उन पर भी सुन्दर नक्काशी है 'देओ इस मन्दिर में दस कक्ष तथा चार बड़े वरांडे हैं। थनाली' की 'खुड्डी' सबसे निम्न मंजिल में है। उसे विशेष अवसर पर ही खोला जा सकता है। सिंहासन जो पांचवी मंज़िल पर है वहीं 'देओ' के दर्शन सुलभ हो सकते हैं। इस मन्दिर पर 'कुरण्ड' तथा कलश भी शोभायमान है। मन्दिर से बाहर एक चक्कों का बड़ा सुन्दर चौकोर प्रांगण है जिस में 'झाड़े' तथा अन्य आयोजन होते रहते हैं।

उत्कीर्णत्व :- देओ मन्दिर थनाली की विशेषता उसकी काष्ठकला है। मगरू छत्तरी के बाद शायद यही एक ऐसा मन्दिर है जिसमें काष्ठ कला का इतना अधिक कमाल कर दिखाया गया है। मुख्य द्वारों पर तथा स्तम्भों पर काष्ठ में जो सुन्दर मूर्तियां तथा बेल-बूटे उकेरे गये हैं वे सचमुच ही अमूल्य धरोहर है। काष्ठकला द्वारा निर्मित दूसरी मंजिल में द्वार के साथ द्वारपाल की 8x18 इंच के आकार की जो मूर्ति है उस पर कलाकार ने अपना बहुत कमाल कर दिखाया है। लगता है कि मूर्ति अभी-अभी मुंह से शब्द निकालने के लिए तत्पर है।

मन्दिर से संलग्न अन्य क्षेत्र :- देओ थनाली का मूल स्थान 'ड़याड' है लेकिन ममेल नामक गांव में तथा वहां से 'गाड़ी देओ तथा 'वी' नामक स्थान पर भी इसके स्थान हैं। कहा जाता है कि पहले यह देओ काओ नामक गांव में आया परन्तु वहां पर उचित स्थान न मिलने पर 'हाजड़ा बावड़ी' के पास जल का प्रबन्ध किया लेकिन योग्य स्थान न पाकर 'धन्यारा' से 'डमैहर' में निवास किया, वहां का मन्दिर जलकर ध्वस्त हो चुका है। वहां से अगला स्थान 'थनाली' ही पसन्द आया। ये [सभी क्षेत्र मन्दिर से सम्बन्धित क्षेत्र माने जाते हैं।

राजस्व तथा सम्पत्ति विवरण :- मन्दिर का राजस्व केवल जनता द्वारा दी जाने वाली 'माढ़ी' तथा 'मान्यता' स्वरूप आये धन से ही एकत्र होता है। जिसमें 'मान्यता' तथा 'डाण्ड' भी सम्मिलित रहता है। इसके अतिरिक्त किसी विशेष आयोजन हेतु जनता द्वारा दिये गये दान व श्रमदान से भी मन्दिर का कार्य चलाया जाता है। उपरोक्त राजस्व से मन्दिर ने निम्न-लिखित सम्पत्ति अर्जित की है जिसका विवरण निम्न प्रकार है :—

(क) **अचल सम्पत्ति :-** अचल सम्पत्ति के रूप में मन्दिर के पास एक 'घराट' तथा 5 बीघा भूमि है जिस पर मुजारों का कोई अधिकार नहीं है। शायद कुछ भूमि मुजारों ने भी हथिया ली है।

(ख) **सचल सम्पत्ति :-** चल सम्पत्ति में 'देओ' थनाली के पास 6 तोले सोना, 8 कि०ग्राम चान्दी, 50 कि०ग्राम के लगभग ताम्बा और $2\frac{1}{2}$ क्विंटल पीतल है। इसके अतिरिक्त चान्दी की मूर्तियां लगभग 5 कि० ग्राम वजन की है तथा सिंहासन में चढ़ाये चान्दी के पतरे हैं।

देओ थनाली गण देवता या स्थानीय देवता माना जाता है। इस की पूजा अन्य देवताओं की पूजा से पूर्व करने का विधान है।

वास्तव में यह मूर्ति 'आदी गण' देवता है जिसे 'चाहड़ू-शील' नामक संज्ञा से अभिहित किया गया है। यक्षों से पूर्व इस स्थान का स्वामी उक्त देवता 'चाहड़ूशील' ही था।

व्यवस्था तथा कार्यकर्त्ता कमेटी :- कार्यकर्त्ता कमेटी में 'मौहता' इत्यादि खानदानी तौर से चुने जाते हैं। खानदानी तौर पर तीन 'मौहते' और एक 'कठियाला' (कठैड़ा) का चयन देवता स्वयं करते हैं और पांचवा 'रसोईया मौहता' भी देवता देओ द्वारा चुना जाता है। इसके अतिरिक्त जनता द्वारा भी पांच 'कारदार' भेजे जाते हैं। जिनमें प्रधान, उपप्रधान, सचिव तथा अन्य दो सदस्य होते हैं। पुजारी भी खानदानी होते हैं। 'गूर' देवता स्वयं ही चुन लेते हैं। जिस व्यक्ति पर देवता का प्रभाव हो जाता है, वही 'खेलने' (दैवी सत्ता प्रेरित) लग जाता है।

पूजा पद्धति :- पूजा संक्रान्ति (साजा) के प्रातःकाल ही होती है। सायंकाल को 'आरती' का विधान नहीं है। रात्रि को मन्दिर का खोलना वर्जित है। इसके अतिरिक्त 'देओ' के जन्म दिवस के अवसर पर विशेष पूजन तथा झाड़े का आयोजन किया जाता है। मार्गशीर्ष की अमावस्या की रात्रि को एक मेले का आयोजन भी होता है जिसे 'बूढ़ी दीवाली' कहते हैं। इस अवसर पर सभी नौ भाई 'देओ' का आगमन होता है। रात्रि को 'देरच' प्रातः चार बजे ब्रह्म मूर्हूत में निकाला जाता है जिसमें सभी देवारोपित नौ 'गूर' अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार 'गुण खुण' की वार्ता करते हैं तथा अपनी 'सवाठी' के लोगों की बड़ी-बड़ी विपत्तियों को दूर करने का विधान सुनाते हैं। उस समय 'पागलों' तथा खिलाये, पिलाये, तथा डाकिनी, चुड़ैल इत्यादि की 'छाया' का ईलाज भी होता है। भूतों, प्रेतों तथा राक्षसों की अरिष्ठाओं का शमन भी किया जाता है।

नौ देओं के नाम तथा स्वरूप :- 'देओं' का प्रादुर्भाव तथा 'देवल्याबिर्भाव' आख्यान के अनुसार इन नौ 'देओं' का वर्णन इस प्रकार उपलब्ध है।

अथ नवम् यक्षकिलितं च देवल्य नामकरणे प्रतिष्ठापित नामं अस स्वरूपारोपण लिख्यते ।।

प्रथमं गुरुनाम्ना सम्बोध्यते तस्य निवास क्षेत्र: कालखुड्डी कथ्यते तस्य स्वरूप श्यामवर्ण किट्टित दंत: अरू वक्रांग दृश्यते अस सर्व भक्षी स्वभाव आरोपिते तस्य नामकरणं कालखुड्डिया कथ्यते ।।१६६।।

इन 'देश्रों' में से प्रथम का नाम 'गुरु' लिया जाता है। उसका निवास 'काल खुड्डी' बताया जाता है। यह श्याम वर्ण तथा कटकटाते दांत व टेढ़े-मेढ़े (वक्रांग) अंग वाला कहा गया है। उसका स्वभाव सर्व भक्षण करने का है। उसे 'काल खुड्डिया' नाम से जाना जाता है।

'द्वितीय तस्य शिष्य वभूत भक्षी कथ्यते तस्य स्वरूपं प्रकम्पित शरीरं च अंगार च बभूत भक्षण अरू अग्नि कुण्डे प्रवेशं मुख्यारोपण कथ्यते तस्य नामकरणं 'भस्मधूड़ीं' कथ्यते ।।१७०।।

दूसरे शिष्य को 'बभूतभक्षी' कहते हैं। जो कांपते शरीर वाला तथा अंगार और भस्म को भक्षण करने वाला है। आरोपित होने पर (उभरने पर) वह सीधा अग्नि कुण्ड में प्रवेश करता है। उसे 'भस्मधूड़ी' नाम से सम्बोधित किया जाता है।

तृतीय शिष्य योगी स्वरूपे च 'भंग भक्षी' आरोपिते तस्य स्वयं मृदु अरू अल्प प्रकम्पन आभिहिते तस्य नामकरण 'दण्ड भंगी कथ्यते ।।१७१।।

तीसरा शिष्य योगी स्वरूप का है, जो अंग पर भस्म धारण करता है, और आरोपित (उभरने) होने पर भांग का भक्षण करता है। उसका स्वर (वाणी) मृदु है। आरोपित गण (गूर) को बहुत कम प्रकम्पन होता है। इसका नामकरण ,दण्डभंगी' किया जाता है।

'चतुर्थे स्वरूपं कार्यक्रम प्रबन्धके च व्यवस्थास्य आरोप्यते तस्य स्वरूपं मानव स्वभावोसमः प्रवोध्यते अरू तस्य नामकरणं बन्दोवस्तिया कथ्यते ।।१७२।।

इसका चौथा रूप है वह कार्यक्रम के प्रबन्ध व व्यवस्था से सम्बन्धित है। उसका स्वरूप मनुष्य के रूप तथा स्वभाव के अनुरूप है। अर्थात् उसे ग्रारोपित होने पर व्यक्ति 'गूर' साधारण स्वभाव का व्यक्ति ही दीखता है ग्रर्थात् प्रकम्पन व प्रलाप का अभाव ही रहता है। इसे 'बन्दोबस्तिया' नाम से सम्बोधित किया जाता हैं।

पंचम पृष्ठ गतिगामिनों अरू विलोम कार्यरते व गते ग्रारोप्यते तस्य कार्य दुष्ट आवेशो च भूत-प्रेत राक्षसः निरोधे ग्रारोप्यते तस्य नामकरणं पीठपुरा कथ्यते ।।१७३।।

पांचवें का स्वरूप पृष्ठगति गामी होता है। अर्थात् वह पीछे की ओर चलता है। उसका कार्य भी गति के अनुसार ही होता है। उसका कार्य (कर्त्तव्य) दुष्ट ग्रावेश को रोकना भूतों-प्रेतों राक्षसों का विरोध करना है। इसका नामकरण पीठपूरा किया गया है।

षष्ठे शिष्यः शमशान घाटे अरू शव प्रिय अरू मृत व्यवस्थेन आरोप्यते तस्य नामकरणं ड़ैढी कथ्यते शमशान गमनं च वक्रांग प्रतिका दृश्यते ।।१७४।।

छठा शिष्य श्मशान घाट और शवों से प्यार करने वाला तथा मृतक व्यवस्था से सम्बन्धित है। वह आरोपित होते ही (उभरते ही) श्मशान घाट की ओर दौड़ता है, उसके सभी ग्रंग उस समय टेढ़े-मेढ़े हो जाते हैं इसे 'ड़ैढी' नाम से जाना जाता है।

सप्तम् शिष्यः जल एवं भस्म आच्छन्न आरोपिते तस्य स्वरूपं गतिशीलं अरू तिक्त वचनम् श्रुत्येऽतैव तस्य नामकरण पन्याढी कथ्यते ।।१७५।।

सातवां शिष्य जल में प्रवेश करके भस्म द्वारा आच्छन्न (लिप्त) हो जाता है अर्थात् जल कुण्ड में स्नान करने के उपरान्त भस्म द्वारा विलोपित हो जाता है। तीव्र गति तथा कठोर वाणी का प्रयोग (ऊंचे चिल्ला कर वार्तालाप तथा ऊंचे सुनना) जिसका स्वभाव है। इसे 'पन्याढी' कह कर जाना जाता है।

अष्टम शिष्य: जन: पंचो अरू जन रक्षक: अरू जना महे भूत वर्तमान च भविष्य कथ्यते अरू प्रश्न्नोतर सम्बोधत: तस्य नामकरणं दवाहली कथ्यते ।।१७६।।

इनमें से आठवें शिष्य को जन पंच और जन रक्षक कहा जाता है क्योंकि वह सभी श्रद्धालु लोगों के बीच में भूत वर्तमान व भविष्य का कथन करता है तथा जनपंच का कार्य करता है। दु:खी लोगों के प्रश्नों का उत्तर देता है। अत: इसे 'दवाहली' नाम से जाना जाता है।

नवमायतिमं चांचल्य भावेन अरू दिग्भ्रमित बहुभाषी कथ्यते च आरोपिते तस्य नामकरणं थनाहली कथ्यते ।।१७७।।

नवें तथा अंतिम शिष्य को इन लक्षणों से जाना जाता है-इसका स्वभाव चंचल होगा। इसकी चाल दिग्भ्रमित, तेज गति तथा चारों ओर को रूख और बहुत सी बातें करने वाला होगा। इसे 'थनाहली' नाम से जाना जाता है।

इति यक्षारोपित देवल्य नामकरणम् ।।
देवल्याऽविभाव: श्रुति मिश्र: (भट्ट् भाखा)

व्युत्पत्ति की धारणायें :- देवधरा हिमाचल में समय-समय पर देवों, दानवों, यक्षों, राक्षसों, नागों, किन्नरों, पिशाचों, म्लेच्छों की सत्ता रही है। प्राचीनकाल में यहाँ यक्षों की सत्ता भी पर्याप्त समय तक बनी रही है।

पौराणिक पृष्ठ भूमि :- यक्ष कुल में इस धरा पर एक समय 'वितरासुर' नामक एक यक्ष राजा हुए थे। वितरासुर के शासन में ही उक्त 'नवदेओ' कार्य रत सामन्त थे।

शव प्रिय राजा वितरासुर उस समय माया पुरी (ममलेश्वर) में निवास करता था। पाण्डवों ने जब मन्दिरों के जीर्णोद्धार की व्यवस्था आरम्भ की तो ममलेश्वर महाकाल सिद्धपीठ के द्वार के सामने वितरासुर ने श्मशान लगाकर शव भक्षण की परम्परा को छोड़ने से मना कर दिया। धर्मराज युधिष्ठर ने मन्दिर के निर्माण में बाधा समझ कर जीर्णोद्धार का विचार त्याग दिया। भीम को इस बात पर क्रोध आ गया परन्तु बड़े भाई युधिष्ठर के सामने उन्होंने अधिक बोलना उचित नहीं समझा। युधिष्ठर के वहां से चले जाने के बाद भीम ने पुनः मन्दिर के जीर्णोद्धार की बात वितरासुर से दोहराई। जिस पर यक्षा ने कटु शब्दों का प्रयोग किया और युद्ध के लिए भीम को चुनौती दी। भीम ने वितरासुर की चुनौती को स्वीकार किया, और मल्लयुद्ध को तैयार हो गए। बारह दिन तथा बारह रात्रि में युद्ध चलता रहा, बारहवें दिन भीम ने वितरासुर को धराशायी कर दिया। धराशायी होने पर भी यक्षराज वितरासुर के प्राण देह में ही अटके रहे और उसका शरीर असह्य पीड़ा से छटपटाता और तड़फता रहा। इस संताप को धर्मराज युधिष्ठर देख नहीं पाये। उन्होंने यक्ष राज से पूछ लिया कि आप मुक्ति क्यों ग्रहण नहीं कर रहे हो? इस पर वितरासुर ने कहा कि मेरे प्राण इस श्मशान में अटके हैं, मैं यहां का मालिक हूं, मैं शव भक्षण करता हूं यह मेरा जन्मसिद्ध अधिकार था। इसने (भीम ने) मुझे अकारण ही मेरे ही घर में आकर मार दिया। इस बात को सुनकर धर्मराज युधिष्ठर को दया आई उन्होंने यक्षराज की मुक्ति हेतु तीन वचन देते हुए कहा :-

1. 'मैं आप में देवत्व की प्रतिष्ठा करता हूं आज से आप यक्ष नहीं देवता होकर पूजे जायेंगे।'

2. आपकी स्मृति में यह श्मशान सदा प्रज्वलित रहेगा। इसकी अखण्डता का पालन युग पर्यन्त होता रहेगा।

3. आपके इस 'अखण्ड चेतन धूणे को प्रत्येक श्रद्धालु प्रणाम करेगा; उसके उपरान्त ममलेश्वर महाकाल सिद्ध पीठ के गौरी शंकर को नमन होगा'।

इन तीन वचनों का आज भी ममलेश्वर महाकाल की सिद्ध पीठ में पारम्परिक प्रथा के रूप में पालन किया जाता है। उपरोक्त तीन वचनों के पूरा हो जाने पर यक्ष राज वितरासुर में देवत्व की प्राण प्रतिष्ठा हो गई और उसे यक्ष देह से मुक्ति मिल गई।

यक्षराज वितरासुर के अन्य दरबारी यक्षों को जिनकी संख्या नौ थी, उनमें भी देवत्व की प्राण प्रतिष्ठा कर ली गई। उन्हें सिद्ध पीठ ममलेश्वर महाकाल के मन्दिर में व्यवस्था के पृथक-पृथक कार्य सौंप दिये गए।

इस प्रकार इन यक्षों की प्राण प्रतिष्ठा करके देवत्व प्रदान किया गया, जो कालान्तर में स्थान-स्थान पर देओं के नाम से पूजे जाते हैं। आज वे लोक कल्याण हेतु देवत्व की भावना से प्रतिष्ठित हैं परन्तु कभी-कभी वे किन्हीं कारणों से आज भी कुपित होकर अपने यक्षत्व का परिचय देने से नहीं चुकते हैं।

ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि :- थनाली नामक इस गांव में यक्षों के नौ परिवार निवास करते थे जिनके नाम निम्न हैं :-

अर्घा, शर्घा मलोचा, सनोचा, वाम्वा, जाम्वा, सींगा, फलोचा तथा मडीना थे। ये सब परिवार यक्ष कुलों से सम्बन्धित थे। ये आपस में सगे सम्बन्धी थे और वे एक ही गांव में निवास करते थे। उनका आने-जाने का पथ भी एक ही था तथा वे एक ही भूमि पर श्रम करके अन्न इत्यादि भी उपजाते थे परन्तु आपस में घोर विरोध तथा शत्रुता रखते थे, इस प्रकार वे असहाय तथा बलहीन होकर एक प्रकार का एकाकी जीवन व्यतीत करते थे। जिस ओर एक गृह का आंगन होता था दूसरे गृह की उस ओर पीठ होती थी जिससे वे एक दूसरे परिवार को देख न सके तथा एक परिवार दूसरे परिवार से बातचीत न कर सके। इस प्रकार वे यक्ष परिवार सदैव आपसी कलह में डूबे रहते थे तथा एक दूसरे परिवार का अनिष्ट सोचा करते थे। वे लोग एक दूसरे के घरों में पांव तक नहीं डालते थे तथा

एक परिवार दूसरे परिवार से वार्तालाप वर्जित समझते थे। वे अपने-अपने कूपों (बावलियों) से जल ग्रहण करते थे तथा दूसरों के जलकूप को स्पर्श नहीं करते थे। इस प्रकार वे एक दूसरे को ईर्ष्या-स्पर्धा, अनिष्ट भरे मन से मारने मरवाने के अनुपम ढंग सोचा करते थे। वे रात-दिन एक दूसरे को नीचा दिखाने तथा प्रतिशोध की भावना में रत रह कर सदैव एक दूसरे के गृह दाह तथा वाक् युद्ध (झगड़ा) तथा अपने जल सरोवर से जल छोड़ कर दूसरों के गृह को जल-प्लावित करने की सोचते रहते थे। उनके भीतर कुदृष्टि दोष भी बहुत भरा हुआ था वे परस्त्री गामी, कुल की बहनों तथा कुल की कन्याओं को सदैव 'बुरी नज़र' से ताकते थे, यहां तक कि उन्होंने कुदृष्टि की सीमा का उलंघन कर दिया था।

इसके अतिरिक्त वे घोर आलस्य में डूबे रहते थे और शराब पीकर सदा मस्त रहते थे, वे सब जीवों के मांस का तथा अपने ही जनों का मांस भी भक्षण करने से चूकते नहीं थे। वे वाम क्रिया (टोने-टोटके) तथा विपरीत कार्य करने में सदा लीन रहते थे। जिसका परिणाम यह हुआ कि वे आपस में गृहयुद्ध करते रहने के कारण युद्ध के उपरान्त अपने कुलों का नाश तथा क्षय कर बैठे। परस्पर अपने ही जनों का अपने ही हाथों नाश को प्राप्त हो गये।

वे यक्ष गण बड़े-बड़े जघन्य कार्य करने से भी नहीं डरते थे। उनकी मार्मिक हत्याकाण्डों की कथा जो एक दिल को हिला देने वाली है, 'धूरजट्ट की भार भाषणी में है जिसका वर्णन इस प्रकार किया है :-

शिहरले थिओ जाम्वेओ जाये।
अघँ शर्घे नदरे आये ॥१॥
वणिआ खणियां फिरे ती रैची।
दूईये जिएओदें काहड़े सैची ॥२॥
एकिये रैचिये किओ जंगैड़े।
जुकिये मुकिये पाये वहैड़े ॥३॥

थंकदे चणदे पैहैन्दे राड़ा।
किओ न कोहिये भाड़ा संभाड़ा ।।४।।

पुरिये रैचिये खोए इच्छैड़ा।
कोहिये किओ न ऐतो ब्याड़ा ।।५।।

जिहूयें जैचिये जोके वदोके।
आधड़े रैचिये जिओआ का मोखे ।।६।।

पीईआ सिहिया वणोते धुता।
जाकरे फाकरे भूजे सगुता ।।७।।

भूजिया रूझिआ खायेआ छेके।
हाडको मुंडको दवारे वदेके ।।८।।

तेतो परान्ते लोड़दे लागो।
लोड़िया ठोड़िआ हाड समागो ।।९।।

रोन्दिआ सोंदिआ इज्जो हो बापो।
झांगणिआ हाम्मे बोलो ते आपो ।।१०।।

ढांगरो ढाशिये पड़े चगोगे।
कुढ़ी का गाड़िये शोहरिये शोगे ।।११।।

क्हिरले शिरल्हे लामो ती कोपे।
बणाओ ते हतया गड़ा सगोपे ।।१२।।

जैठ जिढ़ड़ा क्हिओ खोटे कटुमे।
देओ थनाड़ी वसे वजुमे ।।१३।।

—भार भाषणी : धूर जट्ट

यक्षों का आपस में इतना वैषम्य व वैर भाव था कि वे एक दूसरे की बहू बेटियों पर सदा कुदृष्टि रखते थे और आपसी वैर में प्रतिशोध की भावना लिये जघन्य से जघन्य योजनायें बनाने में प्रयत्न शील रहते थे।

एक समय की बात है कि जाम्बे नामक यक्ष की एक 'शिरल्हे' नामक युवा कन्या थी। अर्घे और शर्घे ने अपने पुराने वैर अथवा प्रतिशोध को पूरा करने के लिये यक्ष कन्या 'शिरल्हे' से बलात्कार

कर उसे समाप्त करने की ठान ली। युवति कन्या बन-ठन कर गांव में इधर-उधर घूमती रहती थी। एक दिन सायंकाल के समय अर्घे तथा शर्घे नामक यक्षों ने शराब पीकर उसे अकेले पाकर पकड़ लिया क्योंकि यह उनका योजनाबद्ध कार्य था। बदले की भावना से दोनों यक्ष समय की ताक में तो थे ही। बलात्कार करने के बाद उसकी हत्या कर दी। वे मद्य के नशे में चूर तो थे ही और साथ-साथ पी भी रहे थे, अतः उन्होंने उसे 'अलाव' में डाल कर भून दिया और उसका मांस खा गये, शेष जो हड्डियों के कंकाल बचे थे उन्हें उठा कर उसके घर के दरवाजे के सामने रख गये।

यक्ष कन्या 'शिरल्हे' के माता-पिता ने जब लड़की की खोज खबर ली तो दोनों यक्षों ने बता दिया कि हमने अपना पुराना वैर निकालने के लिए तुम्हारी लड़की का काम तमाम कर दिया है।

इस पर जाम्बा यक्ष ने अपने परिवार के सब सदस्यों के साथ अस्त्र-शस्त्र लेकर अर्घे व शर्घे यक्षों के घर पर आक्रमण कर दिया और परिवार सहित उनकी हत्या करके दम लिया। 'शिरल्हे, यक्ष कन्या की आत्मा भटकती रही क्योंकि उसकी मृत्यु बड़ी मार्मिक ढंग से हुई थी। अतः वह 'हत्या' बन कर भटकती रही। मृत आत्मायें भटकने पर जीवित परिवारों को कई प्रकार की आधि-व्याधियों से सताती हैं। अतः शिरल्हे' की आत्मा भी कई प्रकार छल तथा अलौकिक कारनामों से अपने चमत्कार दिखाने लगी। इस प्रकार के उत्पात को देख कर 'देओ थनाली' ने इस भटकी आत्मा की शान्ति हेतु 'जढ़ सन्तरण' यज्ञ का विधान करके शिवलिंग की स्थापना की और स्थान की पवित्रता हेतु शिव की पूजा तथा 'लिंगायता' सम्प्रदाय का सूत्रपात किया। इस विषय में लोक धारणा के अनुसार इस लिंग की उत्पति पाताल से हुई, ऐसी मान्यता है। इस प्रकार इस क्षेत्र को 'देओ थनाली' ने अपने अधिकार में बांध लिया।

मेलों का विवरण :- इस मन्दिर से सम्बन्धित केवल एक मेला 'बूढ़ी दीवाली' ही आयोजित किया जाता है। जिसमें बड़ी

संख्या में लोग आकर अपनी 'मान्यतायें' 'देओ' के चरण में समर्पित करते हैं। यह रात्रि मेला मार्गशीर्ष की अमावस्य को मनाया जाता है, इसमें मुख्य आकर्षण 'देरच' ही होता है जिसमें सैकड़ों 'मशाल' लेकर 'देओ' की यात्रा मन्दिर के चारों ओर निकालकर 'दिग् बन्धन' किया जाता है। ऐसे अवसर पर भूत प्रेत, यक्षिणी, डाकिनी, इत्यादि की छाया तथा अन्य व्याधियों का निवारण किया जाता है। इस कार्य तथा शान्ति हेतु लोग दूर-दूर से आकर इस मेले में सम्मिलित होते हैं।

खोट दूर करने का मन्त्र :-

टिमर टांके टटेहो टीर
हास्सदे लंघो हणो वीर
कंवड़ काड़जा जोगणे माये
सभिआ परशिआ ऐतको आये
पारपतिये दोहाये
शिवजिओ जट्टो न्होआये
कोतरा देओते कोतरा वीर
डिहूंन्दे आये उच्छटे टीर
फुर्रो मन्तरा गुरो गभीर
कालका आये छूडो छणीर
भेजे भजाये गैस्स आओ
डंकणी शंखणी गैस्स छाओ
भूता प्रेता मटे मशाणे
तेत गैस्स चालो थ्नाड़िये थाणे
गुरुये बाचा, काड़जो साचा
धापणा छाढ़े देओये थाचा
(पाणिये हन्दराणिये भेखड़े डाड़े
घुणिये धूपे मोरच्छुये झाड़े

साता फुकरे चूड़ा झनाड़े
छाओं डंकणे भूता रागसा रबाड़े
पाटड़े भोईये नकरस भनाड़े)

—तन्त्र वाचा : धूर जट्ट

इस अवसर पर मन्त्रों द्वारा जल को अभिमन्त्रित करके पिलाने पर भेखल की कोंपल से झाड़ने पर तथा धूनी और धूप का प्रयोग करके-सात फूंके मार कर झाड़ू को सिर से स्पर्श करने पर छाया, डाकिनी, भूत, राक्षस का प्रकोप समाप्त हो जाता है। 'चेले' या 'गूर' इस मन्त्र का प्रयोग करते आ रहे हैं। इस स्थान में 'वाताड़' भी एक मुख्य देवता है जिसके द्वारा अधिकतर प्रेत व भूत बाधायें दूर होती हैं।

●

जीवन का महान सदुपयोग उसे ऐसे उद्देश्य के लिए अर्पित करने में है जो हमारे बाद कायम रहे।

—बिलियम जेम्स

●

शिष्य बेटे से कुछ अधिक होता है। शिष्यत्व द्वितीय जन्म है। वह स्वेच्छा से समपर्ण है।

—महात्मा गांधी

डोमेश्वर देवता

आचार्य रामानन्द शास्त्री

कोटेश्वरी नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नन्देश्वरी ।
डोमेश्वर नमस्तुभ्यं भैरवाय नमो नमः ।।

श्री डोमेश्वर देवता, जिनका मन्दिर और प्रसिद्ध मूल स्थान ग्राम गूठाण परगना शीली तहसील ठियोग जिला शिमला हिमाचल प्रदेश में है। यह मन्दिर संगमरमर से मढ़े एक मजिले चबुतरे पर पर्वतीय देवालय वास्तु शैली में निर्मित पांच मंजिल ऊंचा भव्य कारीगरी से युक्त है। इसके निर्माण में पांच-पांच फुट लम्बे पत्थरों को गढ़ कर प्रयोग में लाया गया है। मन्दिर के चारों ओर सुन्दर दीवान खाने बने हैं जिनमें यात्रियों के रहने का सुन्दर प्रबन्ध है।

श्री डोमेश्वर जी च्यवन गोत्र (चौहान) चन्द्र वंश से सम्बन्धित है। प्राचीन काल की बात है कि दरकोटी (कोट-खाई) के राज वंश में धअन और कअन नामक दो बड़े शूर-वीर भाई रहते थे। उन्होंने किसी आपसी विवाद के कारण समर-कोट (बुशैहर) के ठाकुर (शासक) का वध कर दिया। दरकोटी राणा साहिब ने बुशैहर नरेश के भय से उन दोनों भाइयों को अपने देश से निकाल दिया। उस समय ये भाई डोमहर (कोट-खाई) में रहा करते थे। वहां से निकालने पर ये लोग चार-पांच रियासतों को छोड़ कर रितेश रियासत के शरैआं गांव में आ गये। कुछ समय तक दोनों भाई वहां रहे और बाद में "कमाली" (हिमरी, कोट-खाई) में रहने लगे।

शरैश्रां में धअन के पहला पुत्र हुआ और शरैआं निवासी होने के कारण उसका नाम "शूरा" रखा गया। कुछ समय के पश्चात् एक अन्य पुत्र हुआ उसका नाम पार्गी रखा। धअन तो अधिक समय तक रहे नहीं। अब "शूरा पार्गी" शूरता की प्रत्यक्ष मूर्त होने के कारण उस क्षेत्र में उनका प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ने लगा और परिणाम स्वरूप कोट निवासी रितेश शासक उनसे ईर्ष्या करने लगा। कुछ समय के पश्चात् ईर्ष्या शत्रुता में बदल में गई। ठाकुर (शासक) के साथ शत्रुता का अर्थ देश का परित्याग था। अब दोनों भाई अपने चाचा कअन की खोज में निकले। कमाली पहुंचने से पूर्व पार्गी को बनलोग परगना शीली का स्थान प्रिय लगा और वहां ही रहने लगे। उसके वंशज आज भी इसी गांव में हैं। शूरा कमाली (हिमरी कोट-खाई) पहुंचा।

शूरा की अवस्था काफी हो गई थी लेकिन अभी तक उनके सन्तान नहीं हुई थी। आज-कल के समान समस्तजनों का यह अटूट विश्वास था कि हाट-कोटी माता की अराधना से अवश्यमेव सन्तान प्राप्त होती है। अतः शूरा की धर्मपत्नी ने उन्हें बड़ी अनुनय विनय करके हाट-कोटी जाने के लिए राजी कर दिया।

शूरा अन्ततोगत्वा हाट-कोटी पहुंच गया और सात दिन तक अन्न जल ग्रहण किये बिना घोर तपस्या की। शूरा की दृढ़ भक्ति से आदि शक्ति महामाया बहुत सन्तुष्ट हुई और अपने साक्षात् दर्शन देकर शूरा से कहा, हे पुत्र तुम कौन हो? कहां से आये हो? तुम्हें क्या चाहिए? तुम्हारे सात दिन के अन्न-शन के कारण मैंने भी धूप और भोग ग्रहण नहीं किया।

माता के दिव्य एवं करुणामय रूप को देखकर शूरा की आंखों में आंसू आ गये, वह काफी देर तक कुछ बोल नहीं पाया और प्रेमाश्रु टप-टप कर गिरने लगे, सिसकियां भर गईं फिर माता द्वारा पुनः सान्त्वना देने पर कहने लगे। मां, "आप

सब कुछ जानती हैं, मैं शूरा नामक एक किसान हूं तथा हिमरी में मेरा निवास है। हे मां, यह अवस्था हो गई है अभी तक मेरे कोई सन्तान नहीं। इसलिए आपकी अगर कृपा हो तो मेरे घर पर सन्तान हो सकती है।"

महामाया ने कहा, हे पुत्र ! "तुम्हारे पूर्वजों द्वारा नर वध किया गया है जिसके पाप के कारण तुम्हें सन्तान प्राप्ति नहीं हो सकती फिर भी तुम्हारी घोर तपस्या से मैं बहुत प्रसन्न हूं। अतः तुन्हें वर देती हूं कि तुम एक ऐसे शूरवीर योद्धा के जनक होगें जिसके समान तुम्हारे न कोई हुआ न होगा।"

इस प्रकार वरदान देकर महामाया आदि शक्ति दुर्गामाता अर्न्तधान हो गई और शूरा वापिस अपने घर हिमरी (कोटखाई) आ गया। समय आने पर शूरा के घर पुत्र पैदा हो गया। वरदान से प्राप्त पुत्र दिव्य आलोक एवं छवि से युक्त था। बड़ो बधाईयां बांटी गई। ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की कि यह जातक एक महान पुरुष के योग वाला है। भविष्यवाणी के अनुसार बालक बढ़ने लगा। नामकरण का समय आया तो सभी नाम छांटने लगे लेकिन शूरा ने अपनी जन्मभूमि के साथ प्रेम होने के कारण उससे सम्बन्ध रखने वाला नाम "डोम" रखा क्यों कि शूरा के पिता धअन तथा कअन चाचा दरकोटी के निकट डुमैहर में रहते थे और वहां से उन्हें समरकोट के नरेश की हत्या के कारण देश से निकलने के लिए बाध्य किया गया था। (प्राचीन समय में स्थान के नाम से सम्बन्धित नाम रखे जाते थे।)

युवावस्था प्राप्त होने पर श्री डोम अपने मूल स्थान दरकोटी में काम ढुंढने के बहाने से पहुंचे। उस समय के शासक ने उन्हें बकरी चराने का काम दिया। उस समय की एक घटना उल्लेखनीय है कि एक दिन जंगल में बकरियां गुम हुई, बहुत खोजने पर भी जब नहीं मिली तो "श्री डोमेश्वर" वन में ऊंचे स्वरों में चिल्लाने एवं रोने लगे। संयोगवश उस वन में शिव पार्वती भ्रमण कर रहे थे। उन्होंने उसका रोना सुना तथा श्री डोम के निकट गये। रोने का कारण पूछा, बाल स्व-

भाव से उन्होंने बकरियों के गुम होने का समाचार सुनाया। भगवती माता के वरदान से प्राप्त पुत्र के तेज युक्त मुख मण्डल को देखकर महामाया पार्वती ने उन्हें सिद्ध वाक होने का वरदान दिया साथ में बकरियों की दिशा की ओर उन्हें आगे भेज दिया। वरदान स्वरूप अब श्री डोम बकरियों को जंगल में ले जाते हैं वहीं पर उन्हें "जड़न्त" इस शाबर मन्त्र से स्थिर कर देते, सायं काल होने पर "खुलन्त" कह कर उन्हें खोल देते और घर ले आते। सारे दिन स्थिर रखने के कारण बकरियां चर न सकती थी भूख से धीरे-धीरे मरने लगी।

एक दिन बकरियां चुगाने के बाद भूख-प्यास से व्याकुल होकर वन से जब श्री डोम जी वापिस घर आये तथा रोटी मांगी। मालिक व्यंग्य में बोला कि "डोम तुम रोटी की मांग ऐसे कर रहे हो जैसे कि "टाहू" निवासी "नन्दू" को मार आये हो। यह सुनना था कि "श्री डोम" टाहू के लिए रवाना हुए। नन्दू (आतंक वादी) के घर की पूछ-ताछ की। "नन्दू" की पत्नी को पूछा कि नन्दू मामा कहां है? उसने उत्तर दिया कि "तुम कहां के भानजे हो? वे "नाऊर" (बुशैहर) के क्षेत्र को लोहा खरीदने गया है, अन्य भी काफी लोग हैं। कुछ आदमी उनकी सहायता के लिए आधे रास्ते में गये हुए है। अगर तुम उनके भानजे हो तो उनकी सहायता के के लिए चले जाओ।" श्री डोम ने किल्टा मांगा और लोगों के पीछे-पीछे चले गये। जैसे ही उन लोहा लाने वाले का कफिला रास्ते में श्री डोम से मिला तो उन्होंने पूछा कि नन्दू मामा जी कहां है, उन्होंने कहा कि वे पानी पी रहे हैं। श्री डोम उनके पास पहुंचे, श्री डोम ने उन्हें प्रणाम किया। नन्दू ने श्री डोम के अभिवादन को स्वीकार किया, पूछ-ताछ हुई। नन्दू ने पानी पीने के उपरान्त तम्बाकू पीने की इच्छा व्यक्त की। श्री डोम ने जमीन में तम्बाकू पीने का स्थान "बतोक" बनाया जिसमें औंधे मुंह तम्बाकू पीना पड़ता है। जैसे ही श्री नन्दू तम्बाकू पीने लगा श्री डोम ने "डांगरे" से उसका सिर काट दिया और निशानी के रूप में उसका सिर दरकोटी में अपनी मालकिन को

दे दिया। ठाकुर दरकोटी को यह देखकर बड़ा डर लगा परिणा-स्वरूप उसने उन्हें अपने आश्रय से निकाल दिया।

इसके बाद श्री डोम पुनः वनलोग परगना शीली में कुछ दिन रहे। चाचा ने उन्हें लगभग छः बीघे जमीन दी जिस खेत पर अब भी श्री डोम की मलकीयत है। इस खेत का मामला श्री डोम दिया करते हैं साथ में उनको लगान भी मिलता है।

सम्वत् 1150 विक्रमी में श्री डोम ने देहली यात्रा की। उस समय वहां पर तनवार वंश का शासन था। उसने एक ऐसी प्रतियोगिता आयोजित कर रखी थी जिसमें हारने वाले योद्धाओं को कैद कर लिया जाता था। इसी कारण महासू एवं श्रीगुल नामक योद्धा भी कैद में पड़े थे। श्री डोम ने प्रतियोगिता में सात तवों का भेदन कर नारियल में छेदन कर विजय प्राप्त की। पुरस्कार में उन्हें तीन चरु (स्वर्ण मुद्राओं से भरे घट विशेष) प्राप्त हुए। उन्हें उठाने के बहाने से श्री डोम ने महासू तथा श्रीगुल योद्धाओं को कैद से मुक्त कराया, बाद में ये तीनों योद्धा देवता बन गये।

श्री डोम दिल्ली से सीधे रमणीक स्थान 'गूठान' आये और इस लुभावने स्थान पर ही रहने का निश्चय किया। श्री डोम की वीरता एवं शौर्य का प्रभाव सर्वत्र फैलने लगा। उसी समय 'रजाना' के ठाकुर एवं राणा कुमारसैन के मध्य सीमा का विवाद खड़ा हुआ। ठाकुर रजाना ने श्री डोम जी की सहायता ली। परिणाम स्वरूप कम साधनों के होते हुए भी अनेकों बार राणा कुमारसैन को पराजित किया। इस पराजय के रहस्य के विषय में राणा कुमारसैन ने एक तिब्बती तान्त्रिक से प्रश्न किया, तान्त्रिक ने राणा कुमारसैन से कहा कि जब तक ठाकुर रजाना के साथ श्री डोम योद्धा है तब तक तुम्हारी विजय नहीं हो सकती। उस राणा कुमारसैन ने तान्त्रिक से विशेष प्रयोग कराया। तान्त्रिक ने एक बाण को अभिमन्त्रित कर राणा को दिया, जिसके प्रयोग द्वारा राणा ने श्री डोम को "मौंच" नामक स्थान पर

घायल कर दिया। श्री डोम को जब प्यास लगी उन्होंने निर्जल पहाड़ी में अपने तीर के प्रहार से पानी निकाला, वहां पर अभी तक वह जल स्त्रोत विद्यमान है। कुछ ही समय पश्चात् श्री डोम ने इस भौतिक शरीर का परित्याग कर दिया। मौंच के निकट वयारु नामक स्थान में "बघेरी" स्थल पर उनका अन्तिम संस्कार करने का विचार बना। चिता ऐसी जली जो बुझने पर नहीं आती थी, जितना पानी डाला गया आग और बढ़ने लगी फिर "कूड़ा" बावड़ी का विशेष जल लाया गया। यह बावड़ी आज भी विद्यमान है।

"श्री डोम" देहावसान के बाद उनके गोत्री कमाली निवासी के घर पर श्री डोम ने स्वप्न दिखाये तथा स्वयं देवता के रूप में प्रकट होने की इच्छा व्यक्त की। उन्होंने सूनू और सन्नाकी नामक दो कारीगरों को मूर्ति बनाने के लिये बुलाया। काफी दिनों के प्रयासों के बावजूद भी मूर्ति ठीक न बनी। मूर्ति बनाते समय परम्परा अनुसार कारीगर एक ही समय भोजन करते थे। एक समय भोजन करते-करते जब कारीगर ऊब गये, एक दिन गुस्से में आकर वे जब खाना खाने गये तो मूर्ति का सामान वहीं धरा-धराया रख गये। जो स्वतः ही अष्ट धातु कलबूतो (सांचे) के बीच में पड़ गई। कारीगरों के वापिस आने तक मूर्ति तैयार हो गई। इस अचम्भे को देखकर कारीगर घबरा गये। अनहोनी बात की घटना के कारण कारीगरों ने अपनी मृत्यु जान कर दम तोड़ दिये। कारीगरों की पुण्य स्मृति में मूर्तिमान देवता का नाम 'सन्नाटा' रख दिया।

हिमरी में देवता का पहला मन्दिर बनाया गया। गूर के माध्यम से देवता के आदेशोनुसार दूसरा मन्दिर 'गूठान' में बनाया गया। गूठान के भव्य मन्दिर में दर्शनों के लिए लोगों की भीड़ लगी रहती, भक्तों की मनौतियां पूर्ण होती। सर्व प्रथम देवता के चमत्कारी वरदान से हेटे खानदान (घडेडी-घूण्ड) प्रभावित हुए और देवता के पूर्ण अनुयायी बने। धीरे-धीरे उनके अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी।

सम्बत् ११५० के पश्चात् से श्री राजा साहिब क्योंथल (जुन्गा) के पूर्वज देवता डोम पर अटूट विश्वास और श्रद्धा करते आये हैं। अब भी राज परिवार देवता की पूजा पूर्ववत् श्रद्धा पूर्वक करते हैं।

श्री डोमेश्वर के सम्बन्ध में पंजाब गैजटियर बोल्यूम नं० ८ शिमला हिल स्टेटस् सन् १९१० में पंजाब सरकार के आदेशानुसार एक विज्ञप्ति प्रकाशित की गई, जिसमें चतुर्थ क्योंथल स्टैट गैजटियर भाग "ए" पृष्ठ १७ "पञ्चम" में निम्नलिखित तथ्य उद्धृत किया गया :-

"जब क्योंथल रियासत में राजगद्दी नशीनी (राज्यभिषेक) तथा टीका साहिब की उत्पति होती है तब श्री राजा साहिब जुन्गा (क्योंथल) की ओर से श्री देवता डोम की जातर का आयोजन किया जाता हैं। राजा साहिब के अधीन सभी इलाकों में जगह-जगह जातरें होती हैं। इसके अतिरिक्त अन्य इलाकों में भी इसकी बहुत मानता है

जातर का रहस्य :- एक समय की बात है कि चाईक वंश से सम्बन्धित आईचा नामक ब्राह्मण राजा जुन्गा का मुख्य-मन्त्री था। उसका कहना राज्य के सभी लोग मानते थे। अपने प्रभाव से वह राजा की कुछ परवाह न करके सारा राज्य अपना समझता था। इस दुर्व्यवहार से राजा उससे बहुत नाराज़ था। एक दिन मुख्यमन्त्री पालकी में बैठकर रामपुर (क्योंथल) की ओर यात्रा के लिए जा रहा था। राजा ने कर्मचारियों के साथ सलाह करके उसकी पालकी को ऐसे डंकार से गिराया जहां से गिरने पर उसकी तत्काल मृत्यु हो गई। ब्रह्म हत्या के कारण राजा साहिब की कोई सन्तान न हुई। सन्तान के अवरोध को देखकर अनेकों तांत्रिकों, पुरोहितों देवी-देवताओं के पूछने पर ब्रह्म हत्या का दोष लगा पाया गया, उसकी निवृति कोई न कर सका। अन्त में श्री डोमेश्वर को पूछा तो उन्होंनें ब्रह्म हत्या के पाप को धोने का सरल उपाय 'भलावग' नामक स्थान पर चौरासी हाथ लम्बा वर्गाकार तालाब बनवानें को कहा उस

तालाब को अश्विनी नदी जो जुन्गा के साथ बहती है से भरवाया और वहां पर राजा के हाथों चौरासी ब्रह्मामणों, ८४ कन्याओं को को भोजन आदि से तृप्त किया तथा ८४ गऊओं का दान करवाया, अन्त में चान्दी की दो मूर्तियां आइचे की आकृति की बनवाई जिसमें से एक की स्थापना वहीं की और एक मूर्ति अपने साथ ले गये। तालाब का नाम 'श्री डोमेश्वर' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। इस उपाय के करने पर राजा साहिब क्योंथल के घर पर सन्तान हुई। जिसकी खुशी में राजा ने अपने समस्त राज्य में "श्री डोमेश्वर" की जातरें करवाई ।

जातर के लिए जब देवता के रथ को तैयार किया जाता है तो सर्व प्रथम महाराजा जुन्गा का एक बहुमुल्य रेशमी वस्त्र (शाड़ा) एक पगड़ी तथा एक जातर का आज्ञापत्र भेजा जाता है। इसके बाद रथारूढ़ महाराज श्री डोमेश्वर सबसे पहले अपनी माता कोट काली के मन्दिर में भेंट चढ़ाने जाते हैं तथा उस रथ में महामाया आदि शक्ति की ध्वजा लगाकर उसका आह्वान रथ में किया जाता है। इसके उपरान्त तीन मुख्य जातरें गूठाण में होती हैं फिर समस्त क्योंथल ठियोग, घूण्ड, कुछ कुमारसैन, बुशैहर, कोटगढ़ कोट-खाई, कण्डाघाट, सुबाठू , कुठाड़ आदि के क्षेत्रों में जातरें नाचने तथा देवदर्शन के लिए श्री डोमेश्वर को ले जाया जाता हैं। तीन वर्षों के अन्दर यह जातर यात्रा पूर्ण होती है। जातरें पूर्ण होने पर बढात्तर (वह उत्सव जब जातरें पूर्ण होने पर देवता अपने मन्दिर में प्रवेश पाता है) के अवसर पर महाराज क्योंथल, ठाकुर ठियोग, ठाकुर घूण्ड, दरकोटी, ठाकुर करांगल भी गूठाण में निमन्त्रित होते हैं। इसी समय लगभग पच्चीस देवता अपनी प्रजा के साथ इस लोकयज्ञ में आते हैं, इस प्रकार कम से कम बारह-पंद्रह हजार लोग उत्सव में भाग लेने आते हैं और तीसरे दिन अपने-अपने घर जाते हैं।

इसके पश्चात् देवता तीर्थयात्रा पर जाता है वापसी पर सत्यनारायण की कथा होती है। एक वृहत् ब्रह्म भोज भी कराया जाता है।

इस मन्दिर के प्रबन्ध की समुचित व्यवस्था के लिए एक वंश परम्परा पर आधारित समिति बनी हुई है। जिसमें श्री कानिया नम्बरदार के वंशज (प्रपौत्र) श्री नरेश कश्यप, प्रधान श्री ठाकुर आत्मा राम के पुत्र श्री मदन लाल ठाकुर मोहतमीन, तथा मन्दिर कमेटी के मुख्य नियन्त्राक स्व० श्री बलिराम कश्यप के पुत्र श्री केशव राम कश्यप एडवोकेट बिशुड़ो निवासी मुख्य है। हर अनुयायो (कल्यैणें) के ग्राम से एक-एक सदस्य, तथा परिवर्तन योग्य दो भण्डारी उस समिति के सदस्य होते हैं।

इस मन्दिर में गूठाण के निकटवर्ती गांव के ब्राह्मण नियमित रूप में प्रात: सायं दो बार पूजन करते हैं और मन्दिर में रहकर रात्रि में रखवाली भी करते हैं। लोक विधि से पूजन किया जाता हैं।

इस मन्दिर में हर साल बैशाख के मास में "बिशु" का मेला मनाया जाता है, जिसमें कम से कम दो देव स्थानों से विशेष नर्तक दल बुलाये जाते हैं। हजारों लोग इस मेंले का आन्नद लेते हैं। इसके बाद श्रावण मास की पूर्णिमा को शड़्नों (रक्षाबन्धम) का मेला रात्रि जागरण सहित धूम-धाम से मनाया जाता है। इन मेलों के अतिरिक्त निम्नाकिङ्त पर्व भी बड़ी धूम-धाम से मनाये जाते हैं।

श्री कृष्ण जन्माष्टमी, विजयदशमी, (दुर्गाष्टमी को कोट में एक बड़ा यज्ञ सहित) दीपमाला, माघसंक्रान्ति, शिवरात्रि, चैत के नवरात्रे, होली है।

दूर-दूर से आये यात्रियों को निशुल्क भोजन शयन आदि की पूर्ण व्यवस्था है। कई पुश्तों के उपरान्त शान्ति यज्ञ (शान्त) उस समय की जाती है जब मन्दिर की मुरम्मत की जाती है। इसमें बढारत से भी अधिक राजे, राणे, ठाकुर, देबता, साधारण जन इक्ट्ठे होते हैं, तथा सबके भोजनादि की पूर्ण व्यवस्था की जाती है।

देवांश :- देवता का भाग जो कि उन सभी ग्रामों के वासीसियों को देना पड़ता हैं जो उस देवता को मानते हैं लेकिन

एक बार ग्राम लखोटी में देवता हर वर्ष की भांन्ति जातर में जा रहा था। वहां के निवासी देवता का भाग नहीं देना चाहते थे। इसलिये उन्होंने शिमली नामक श्मशान घाट पर एक मोई (आदमी के समान लम्बा चौड़ा लकड़ी का फट्टा जिससे हल चलाने के बाद मिट्टी को सीधा किया जाता है) को जलाकर यह अफवाह फैला दी कि लखौटी नोवा ग्राम में एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई है अतः जातर नहीं होगी। इस असत्य प्रचार का यह परिणाम हुआ कि लखौटी "नोवा" ग्राम में आठ व्यक्तियों की मौतें हो गई। देव-दोष का आभास होने के कारण देवता की शरण में गये देवता ने गूर द्वारा देव वाणी में कहा कि लखोटी नौवां के निवसियों ने श्री डोम देवता तथा शिमली मुर्दघाट के यमदूत को ठगा है। इसलिए मौतें तो होगी उस समय से उस गांव में एक जातर दण्ड के रूप में अधिक देनी पड़ी।

श्री डोमेश्वर देवता गूठाण के मन्दिरों की सूचि :-

क्रमांक	स्थान का नाम	परगना/तहसील	मन्दिर अथवा चौंरा
1.	गूठाण	शिल्ली (ठियोग)	मुख्य मन्दिर।
2.	धार	,,	मन्दिर
3.	मनलोग	,,	देवरा
4.	महौरी	,,	मन्दिर
5.	बिशुड़ी	,,	चौंरा
6.	मौंच	,,	,,
7.	साम्बर	ठियोग रियासत	मन्दिर
8.	कलार	,,	,,
9.	मातली	,,	,,
10.	बसमोल	,,	,,
11.	नैहरा	,,	,,
12.	मलेना	,,	,,
13.	दवैयां	रितेश (ठियोग)	,,
14.	चरैन	घूण्ड (,,)	,,
15.	नमाणा	,, ,,	,,

16.	गढैड़ी	,, ,,	,,
17.	बैवण	चजौली (कोट-खाई)	,,
18.	कढ़ैल	चगांव (,,)	,,
19.	हिमरी	,, (,,)	मूल मन्दिर
20.	जनौल	,, (,,)	मन्दिर
21.	जंगरौली	,, (,,)	,,
22.	कुंथिल	सिरमौर (राजगढ़)	,,
23.	हलाइला	बलसन (कोट-खाई)	,,
24.	ढंगवी	,, ,,	चौंरा
25.	मंदरोली	कोट-खाई	मन्दिर
26.	जढोली	,,	,,
27.	दरकोटी	,,	चौंरा
28.	नेहरा	,,	मन्दिर
29.	पुड़गा	,,	,,
30.	चड़ैणा	,,	,,
31.	कमाली	कदरन	,,
32.	ढ़ैला	कोटखाई	,,
33.	हिमरी	भज्जी सुन्नी	,,
34.	पमलाही	कोटगढ़	,,
35.	दरकोटी	बुशैहर कोटखाई	,,
36.	सैई	सिहल ठियोग	,,
37.	कुमाहरवी	बुशेहर	चौंरा
38.	शरैयां	रितेश	मन्दिर
39.	गिरब	कैंमली शिमला	,,
40.	फागला	कलजून ,,	,,
41.	दाड़वा	कुठार कसौली	,,
42.	शिवा	,, ,,	,,
43.	बमढ़ोल	जुब्बल	,,

देव कुरूगण-एक परिचय

दुर्गादत्त शर्मा

तहसील सुन्नी, जिला शिमला में ग्राम बझोल में लगभग 200 वर्षों से भी पूर्व के समय का एक मन्दिर है। इस मन्दिर के देवता का नाम कुरूगण है। इस देवता का मुख्य स्थान मंढोड़घाट है जहां इसे 'मंढोड़ी देव के नाम से भी जाना जाता है। देव मढ़ोड़ी के बारे में जनश्रुति है कि लगभग 200 वर्ष पूर्व गांव कंडोला जो कि तहसील सुन्नी सें 10 कि० मी० पीछे हैं और गांव मंडोड़घाट के साथ ही है, वहां से बझोल वालों का का एक पूर्वज राजपूत आया था जो अपने साथ अपने इष्ट मंढोड़ी देवता को भी बझोल लाया था। कुरूगण देवता का सम्बन्ध महाभारत के कौरव वंश से है। इसी वंश में कालान्तर में हुए राजा ही वर्तमान काल में यत्र-तत्र देवता के रूप में स्थापित है। कुरूगण का यह मन्दिर बझोल ग्राम में स्थित है। मन्दिर का आकार 12 फुट लम्बा 12 फुट चौड़ा तथा 20 फुट ऊंचा है। यह मन्दिर दो मंजिल है। इसका निर्माण पत्थरों द्वारा किया गया है। मन्दिर साधारण मिश्रित शैली में निर्मित है। इस देवता की मान्यता इस क्षेत्र के अन्य आठ गांवों में भी हैं। मन्दिर गांव के एक ऊंचे टीले पर निर्मित है। मन्दिर को स्थानीय शब्दों में "कोठी" कहा जाता है। इस दो मंजिल मन्दिर की ऊंचाई लगभग 20 फुट है। नीचे की मंजिल में देवता के साज-बाज तथा ढोल नगाड़े इत्यादि रखे जाते हैं तथा ऊपर की मंजिल में देवता की मूर्तियां स्थापित हैं। ऊपर जाने के लिए बाहर से ही लकड़ी की एक सीढ़ी सी लगी है। यह मन्दिर पत्थर, गारा तथा लकड़ी का बना है। मन्दिर के अन्दर की छत लकड़ी से बनी है तथा बाहर ऊपर की छत बनाने में स्लेट के पत्थर का प्रयोग

किया गया है। मन्दिर के चारों ओर चौरे के बाहर पीपल आदि के वृक्ष उगाये गये हैं। मन्दिर में जाने के लिए एक प्रवेश द्वार बना है जो पत्थर से ढका गया है। मन्दिर में ऊपर की मंजिल का दरवाजा लगभग तीन फुट ऊंचा तथा दो फुट चौड़ा है। अतः मन्दिर में प्रवेश करने के लिए झुक कर जाना पड़ता है। इस द्वार को स्थानीय शब्दों में "पोल" कहा जाता है। इस का प्रयोग स्त्री वाचक अर्थ में होता है। पोल हमेशा खुली नहीं रहती। केवल पूजा के समय में या जगराता इत्यादि अवसरों पर ही इसे खुला रखा जाता है। इस कोठी की बाईं ओर समानान्तर रूप में तीन घर निर्मित है जो स्थानीय राजपूतों के हैं। इन्हीं के पूर्वजों के साथ लगभग 200 वर्षों से भी पूर्व देवता इस स्थान पर आया था। यहां यह उल्लेखनीय है कि घर देवता के मन्दिर से ऊंचे नहीं बनाये जा सकते। यह देवता मन्दिर में मूर्ति के रूप में स्थापित है। देवता कुरूगण की मुख्य मूर्ति अष्टधातु की है। यह पुरुष संज्ञा में है। बड़ी-बड़ी मूंछें तथा गले में सर्प लिपटे हैं। कानों में कुंडल हैं सिर पर मुकुट हैं। इस मूर्ति का वज़न लगभग 200 ग्राम है।

कुरूगण की इस मूर्ति के बाईं ओर माता मनसा देवी की मूर्ति है। इसे स्थानीय लोग "मनसावीं" कहते हैं। माता चतुर्भुजी रूप में स्थित है। देवी के एक हाथ में त्रिशूल, एक में शंख एक में मुदगार तथा एक में चक्र हैं। यह मूर्ति अष्टधातु की बनी है। कहा जाता है कि बहुत प्राचीन समय में देवी मनसा बझोल के ठीक ऊपर करीब-करीब दो कि० मी० की दूरी पर गांव बशोल में आई, जब उसे पता चला कि कुरूगण का मन्दिर नीचे है तो देवी, देवता के ऊपर इतनी दूरी पर नहीं रहना चाहती थी। अतः वह कुपित हो गई और वहां तुरन्त आसमानी बिजली गिरी तथा बहुत बड़ा गढ़ा वृत्ताकार में बन गया है। इस वृत्त का आकार 100 वर्ग फुट से भी अधिक है जो अभी भी वहां विद्यमान है तथा इस स्थान को 'बशौल का ओल' जाना जाता है। फलस्वरूप माता को कुरूगण के साथ ही गांव बझौल के मन्दिर में स्थापित किया गया। कुरूगण की मुख्य

मूर्ति के अतिरिक्त इस मन्दिर में 19 मूर्तियां और हैं जिनमें एक मूर्ति पत्थर की और शेष मूर्तियां अष्ठधातु की बनी हैं। अन्य मूर्तियां कुरूगण देवता के पार्षद तथा सैनिक आदि हैं। स्थानीय भाषा में इन्हें नौड़-भौड़ की संज्ञा दी जाती है। इन मूर्तियों का आकार 3 और 6 ईंच के मध्य है। इन मूर्तियों के अतिरिक्त दो लोहे घोड़े के भी बने हैं। ये घोड़े किसी व्यक्ति ने अपने दो पुत्रों के होने की प्रसन्नता में देवता को भेंट किए हैं। ये सभी मूर्तियां मन्दिर में एक लम्बी लकड़ी की चौकी पर रखी गई हैं। मन्दिर का मुख्य दरवाजा उत्तर दिशा की ओर है और मूर्तियां पश्चिमाभिमुखीं हैं। इन सब मूर्तियों के गले में पुष्प मालाएं खुदी हैं। इनके अतिरिक्त मन्दिर में तीन पीतल की घंटियां, दो शंख, देवता की पूजा के लिए रखे गये हैं। दो तांबे के रणसिंगे भी मन्दिर में रखे गये हैं। पूजा के लिए एक लोहे की खड़ी गड़ी हुई ज्योति है, धूप देने के लिए एक पात्र है जिसे "धनेश" कहा जाता है। इसमें पूजा के समय कृत्रिम धूप के अतिरिक्त मक्खन तथा पाजे की पत्तियां एवं बुंगड़ी (एक जंगली पौधा होता है) के पुष्पों को जलाकर धूप अर्पण किया जाता है। पूजा के लिए एक स्टील का लोटा है जिसमें एक किलो पानी आता है। इस लोटे में चांदी के सात रुपये बांधे हुए हैं। ये रुपये जार्ज-सैकिण्ड किंग एम्परर के समय के हैं। मन्दिर के अन्दर ही हवन का स्थण्डिल है जहां नवरात्रों में हवन किया जाता है। मन्दिर की निचली मंजिल में ढोल नगाड़े तथा ध्वजा आदि रखे गये हैं। यह स्थान स्टोर के रूप में प्रयोग किया जाता है।

देवता का पुजारी पूजा करते समय संस्कृत भाषा का का प्रयोग करता है। पूजा का क्रम इस प्रकार है— सर्वप्रथम पंचगव्य, गंगाजल से देवता का स्नान तथा शुद्धि करवाई जाती है जिसका मन्त्र इस प्रकार है :- ॐ अपवित्रः पवित्रोवा सर्वावस्थांगतो डपिवा यस्मरेत पुण्डरीकाक्ष सवाह यम्पन्तर शुचि', उपरान्त मूर्तियों को कुंकुम का तिलक लगाया जाता है इसके पश्चात् अक्षत् पुष्प, धूप दीप तथा नैवेद्य देवता को अर्पण किये जाते हैं। पूजा के समय में ढोल नगाड़े, करनाल, शंख तथा घण्टी

आदि देव वाद्यों को बजाया जाता है। जब कभी नियुक्त किया गया पुजारी किसी कारणवश पूजा नहीं कर पाता तो गांव वालों का यह प्रतिनिधि जिसमें देवता (कुरूगण) खेलता है, जिसे स्थानीय भाषा में "दिवां" कहते हैं, वह देवता की पूजा करता है। वह साधारण प्रचलित शब्दों में देवता की अर्चना करता है जैसे :-

हे कुरुगण देवता ! तेरी जय हो। सब गांव वालों की ओर से धूप दीप तथा पूजा स्वीकार करो, बाल बच्चों, पशुओं की सर्वदा रक्षा करो, बुरी नजर दूर करो, फसल की रक्षा करो। शत्रु प्रकोप को दूर करो। भूत प्रेत से हम सबकी रक्षा करो। हम सभी तुम पर कुर्बान हैं इत्यादि-इत्यादि।

देवता के कारकून : देवता के कारकून "देव कुरूगण" जिसमें खेल आती है उसे स्थानीय भाषा में दिवां या घरीता कहते हैं। एक दिवां दरवानी यानि द्वारपाल का होता है, एक में देवी खेलती है तथा एक दिवां दानों यानि सहस्त्राबाहु का होता है। इस सारे कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए अन्य चार पंच होते हैं। एक देवता का भण्डारी होता है एक पुजारी होता है। इसके अतिरिक्त देवता की छड़ी तथा झण्डा उठाने वाले, बाजा बजाने वाले कारकूनों में ही आते हैं। चार पंचों की नियुक्ति सर्वसम्मति से गांव के लोगों द्वारा की जाती है। देवता के दिवें या गूर को देवता स्वयं नियुक्त करता है शेष कारकूनों में से यदि किसी भी व्यक्ति का कार्य संतोषजनक न हो तो उसके स्थान पर अन्य किसी व्यक्ति को नियुक्त कर दिया जाता है। दिवेंया गूर पर देवता के सारे कार्य की व्यवस्था का उत्तर-दायित्व है। उसमें देवता खेलता है। अतः प्रमुख संक्रान्तियों, मुख्य त्योहारों या जब देवता की पंचायत तथा जागरण आदि का कार्य हो तो उन्हें शुद्ध अवस्था में रहना होता है तथा वे पंचायत को हर प्रकार का सहयोग देने का उत्तरदायित्व वहन करते हैं। जब भी देवता के विषय में पंचायत बुलानी है, जगराता कराना है अथवा मन्दिर की मुरम्मत आदि करनी हो तो चार पंचों की पूर्ण सहमति से ही सारा कार्य हो सकता है। दिवें या गूर को

पूछ देते समय पंच उनके और पूछ देने वालों के बीच सम्पर्क सूत्र का कार्य करते हैं। भण्डारी देवता के सारे आय तथा व्यय की जिम्मेवारी को निभाता है। अन्य कारकून अपने-अपने उत्तरदायित्व को निभाते हैं।

बझोल गांव के बीच में देवता का एक चौंरा है। यह वह स्थान है जहां गांव वाले सार्वजनिक कार्य के लिए एकत्रित होते हैं। यह स्थान "चौगल" जाना जाता है। लगभग 35 वर्ष पूर्व एक ग्रामीण द्वारा पुत्र प्राप्ति की प्रसन्नता में देवता कुरूगण देव मंढोड़ी तथा देवता धांधी (न्हेवट) की जातर (यात्रा) करवाई गई थी। परम्परा के अनुसार कुरूगण (मंढोड़ी देव) का स्थान पहला है और देव धांधी का स्थान दूसरा। इस अवसर पर देव धांधी पहले पहुंच गया और चौंरे पर रथ छत्र सहित विराजमान हो गया। इसके पश्चात्, देव मंढोड़ी पहुंचा, ज्यों ही उसने देव धांधी को चौंरे पर विराजमान देखा त्यों ही उसका रथ और छत्र इतना भारी हो गया कि इसके उठाने वाले थक गए, पसीना-पसीना हो गये तथा जिस छत्र को एक व्यक्ति उठाता है उसे आठ-दस व्यक्तियों ने पकड़ा। यह विरोध देव मंढोड़ी ने अपने मुख्य स्थान पर देव धांधी को पहले ही बैठा लेने के लिए किया। नियमानुसार देव मंढोड़ी को चौंरे पर बैठाया जाना था देव धांधी को चौंरे के नीचे और जिस समय देव मंढोड़ी वहां पहुंचा तो देव धांधी को उसका स्वागत करने के लिये स्थान छोड़ना था। इसका परिणाम यह हुआ कि देवता रूष्ट हो गया तथा दोबारा देवता की जातर करवानी पड़ी। इस प्रकार कई स्थानों पर लोगों ने जो भी मन्नत मानी वह देवता ने पूरी की और उसके बाद देवता उनके घर आया तथा जातर मनाई गई।

ग्राम बंझोल में देव कुरूगण की मूर्तियां केवल मन्दिर में ही स्थापित रहती हैं तथा रथ के रूप में नहीं निकाली जातीं। रथ छत्र केवल मंढोड़घाट से ही आता जाता है। देवता का पूजन करने के लिये ब्राह्मण पुजारी नियुक्त किया जाता है। इस कार्य के लिए उसे छटे महीने यानि वर्ष में दो बार

फसल आने पर छमाही के रूप में प्रति घर से अनाज दिया जाता है। पूजा के समय जो कुछ अन्न व भोग देवता को अर्पण किया जाता है उसका शेष भाग पुजारी ही ग्रहण करता है।

देवता की पूजा वर्ष में बारह महीने, बारह संक्रातियां में की जाती है। इसके अतिरिक्त चार मुख्य त्योहारों में भी देवता की पूजा की जाती है। ये त्योहार हैं बैशाखी जिसे स्थानीय शब्दों में बिशु या बसोआ कहते हैं। इसके पश्चात् हरियाली या रिहाली जो श्रावण मास में आती है जब वर्षा ऋतु में चारों ओर वनस्पति जगत में प्राकृतिक सौन्दर्य निखर आता है, झरने तथा नदी नाले पूर्ण यौवन में होते हैं तो देवता का पूजन किया जाता है। इसके पश्चात् असौज मास में पशुओं का मेला जिसे 'मालपुन्या' कहा जाता है उस समय तथा कार्तिक मास में दीवाली के अवसर पर भी देवता का पूजन किया जाता है। इन त्योहारों पर देवता को पके हुए अन्न का भोग लगता है। जिसमें चिलड़ू, खिचड़ी, बबरु तथा मक्की के आटे में गुड़ डालकर अलग-अलग रोट देवताओं को अर्पण किये जाते हैं। इसी प्रकार माघी, बसोआ, रिहाली तथा सायर (असौज) इन चार संक्रातियों में जिन्हें जेठी साजी कहा जाता है, के अवसर पर भी पूजा का विधान है। जब कोई स्थानीय व्यक्ति किसी शुभ अवसर पर जैसे नामकरण संस्कार कर्णविध, यज्ञोपवीत, विवाह या धार्मिक अनुष्ठान तथा यज्ञ आदि शुभ कृत्यों में देवता का पूजन करवाना चाहे तो स्वेच्छा से करवा सकता है। देवता का पुजारी ऐसे कृत्यों में देवता के पुष्प, चावल अमुक कार्य की निर्विघ्न समाप्ति के लिए सम्बन्धित व्यक्ति को आशीर्वाद के रूप में देता है।

इन संक्रातियों, त्योहारों व उत्सवों पर देवता के मन्दिर का मुख्य द्वार खुला रहता है। ऐसे समय में किसी भी पुरुष या नारी को ऊंचे पेड़ पर नहीं चढ़ना पड़ता और उस स्थान के आस-पास वाले घरों में चारपाई पर भी सो नहीं सकते, केवल भूमि आसन ही प्रयोग होता है जब तक मन्दिर का

द्वार बन्द नहीं हो जाता। ग्राम बझोल में जितने भी राजपूत परिवार हैं उनके घर में जब भी ज्येष्ठ पुत्र के पहला पुत्र उत्पन्न होता है तो उसके मुंडन संस्कार तथा बिवाह पर देवता को जीव बलिदान करने की परम्परा है। यह बलिदान बकरा (छेलू) या भेड़ू (खाड़ू) का दिया जाता है। इसके अतिरिक्त वर्ष में दो बार जब मक्की तथा गेहूं की फसल आती है तो किसान लोग उस अन्न में वृद्धि के लिए तथा स्थानीय देवता को प्रसन्न करने के लिए जो फसल आई होती है उसी को पका कर देवता को अर्पण करते हैं। वर्ष में तीन बार मन्दिर के पास देवता का जगराता मनाया जाता है। इसे 'जागरा' या 'परेशीरात' कहा जाता है। इस अवसर पर ग्रामीण शाम को देवता के मन्दिर के पास एकत्रित हो जाते हैं तथा बहुत सी लकड़ियों को एकत्रित करके मन्दिर के बाहर प्रांगण के बीच में उन्हें जलाते हैं, इन लकड़ियों को रहोटी कहा जाता है। जब ये इकट्ठी जला दी जाती हैं तो इसे बलिराज कहा जाता है। कहीं पर अपभ्रशं रूप में 'बरलाज' शब्द का प्रयोग किया जाता है। प्रातःकाल देवता खेलता है तथा सबकी रक्षा का वचन सुनाता है। यदि कोई व्यक्ति देवता के पास अपनी कोई समस्या या दुःख प्रकट करे तो देवता उसे अभयदान देता है। यह जगराता भाद्रपद मास की कृष्ण अमावस्या तिथि को, असौज मास की शुक्लपक्ष की पूर्णमासी को तथा कार्तिक मास की कृष्ण पक्ष की अमावस्या यानि दीवाली को मनाया जाता है।

इसके अतिरिक्त प्रति चार वर्षों के पश्चात् पांचवे वर्ष में पर्वत पूजा मनाई जाती है जिसे 'पंचबला' कहा जाता है। इस कार्य में पांच या सात प्रकार के जानवरों की बलि दी जाती है। यह जानवर इस प्रकार होते हैं। 1. बकरा, 2. मुर्गा, 3. मछली, मेंढक, पनशाकड़ा; 4. भैंसा तथा 5. सुअर आदि। इस बलिदान के पीछे यह धारणा है कि गांव में कोई प्राकृतिक प्रकोप न आने पाये तथा कोई आधी व्याधि व्यापत न हो इसलिए पर्वत पूजा के नाम पर पंचबलि का विधान है। गांव बझोल से लगभग एक कि० मी० की दूरी पर (दक्षिण दिशा में) एक स्थान है जिसका नाम 'गाशा की धार' है। पंचबलि

का आयोजन वहीं किया जाता है। इस आयोजन पर देवता के वाद्य जिन्हें 'दरागे' कहा जाता है तथा देवता के गूर और पंचायत के सभी सदस्य इसमें भाग लेते हैं। जैसे ही ये बलिदान होता है तो बलियों को चारों दिशाओं में दूर दूर तक फेंक दिया जाता है। इन्हें कोई व्यक्ति नहीं खा सकता। इसके पश्चात् गिद्धें जिन्हें स्थानीय भाषा में ईल कहा जाता है तथा कौए आदि इन बलियों को खा जाते हैं। ज्यों ही गिद्ध व कौए आदि इन बलियों को खाने के लिए आते हैं तो इस क्रिया को 'वाण पड़ना' (वाहन आना) कहते हैं। स्थानीय लोगों से पता चलता है कि पिछले कई वर्षों से पंचबलि नहीं दी गई है, कारण यह है कि यह बलियां जुटाई नहीं जा सकी हैं। कई स्थानों पर बुचड़खानों से कटे हुए जानवरों को खरीद कर बलि के रूप में प्रयोग किया जाता है। गांव वालों के अनुसार उन्होंने बलि विधान को बन्द करने की प्रार्थना देवता के पास की थी जो स्वीकार नहीं की गई।

बझोल वालों की ज़मीन चार कि० मी० की दूरी पर रेहाणा नामक गांव में पड़ती है। वहां पर भी मन्दिर तो निर्मित नहीं किया है परन्तु ज़मीन के साथ देवता का सम्बन्ध होने के कारण वहां कुरुगण देवता की पत्थर की मूर्तियां विद्यमान हैं। मूर्तियों के चारों ओर बहुत से पेड़ उगाये गए हैं जिसे 'झाकड़ी कहा जाता है। इस स्थान पर पेड़ व बेलों का उगाया जाना आश्रम परम्परा के अन्तर्गत आता है। यहां भी देवता की पूजा हर मुख्य संक्रान्ति, मुख्य त्योहारों तथा विशेष पर्वों पर उसी प्रकार होती है जैसे बझोल में की जाती है। वर्ष में एक बार मार्गशीर्ष की पंचमी को यहां देओठन (देवता का का उठना/जागना) के अवसर पर बलिराज की पूजा की जाती है। इस मौके पर बझोल से देवता के वाद्य तथा अन्य निशान पंचायत, रेहाणा में आकर जागरण करते हैं। यह गांव देवता की शाखा गांव के अन्तर्गत आता है।

वर्ष में दो बार फसल में वृद्धि के लिए फसल आने पर बढेरा (भंडारा) किया जाता है। जिस समय गेहूं की फसल

ग्राती है तो उसे पकाकर देवता के मन्दिर के पास ले जाकर पहले देवता के अर्पण किया जाता है तथा बाद में सभी ग्रामीण बच्चों तथा ग्रामवासियों में इसे विपरित किया जाता है। इसी प्रकार मक्की की फसल आने पर भी देवता की प्रसन्नता तथा फसल में वृद्धि के लिए बशकाली का बढेरा आयोजित किया जाता है। जब कोई नया गूर (दिवां) नियुक्त होता है तो उसे देवता को जीव बलिदान करना पड़ता है तथा पंचों के द्वारा जलती हुई बत्ती उसके मुंह में डाली जाती है जिसे वह ज्यों का त्यों निगल जाता है। यह उसे शक्ति प्रदान करने का सूचक मानी जाती है। इस अवसर पर उसमें देवता की खेल रहती है। इसके पश्चात् उसे मान्यता प्राप्त दिवां (गूर) माना जाता है। जब तक उपरोक्त प्रक्रिया पूरी नहीं हो जाती वह दिवां कहने का अधिकारी नहीं होता।

गत 1-11-86 को दीवाली की रात की एक अभूतपूर्व घटना है कि कुरुगण देवता की मुख्य मूर्ति अपने स्थान पर नहीं थी, देवता के कारदारों से मालूम हुआ है कि यह मूर्ति दीवाली की प्रातः अपने स्थान पर थी और पुजारी तथा गूर ने वहीं देखा था। जब दीवाली के दूसरे दिन बलिराज की पूजा की गई तो कुरुगण के गूर ने रहस्योदघाटन किया कि देवता की मुख्य मूर्ति अपने स्थान से उड़कर कहीं अन्यत्र जा चुकी है। इस का कारण यह बताया जाता हैं कि देवता के मन्दिर आस-पास में स्वच्छता न होने के कारण रुष्ट है तथा कारदार अपना कार्य पूर्ण उत्तरदायित्व से नहीं निभा रहे हैं। देवता के स्थान पर ग्राकर लोग अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए बहुत बड़े वायदे करके जाते हैं परन्तु बाद में उन्हें पूरा नहीं कर पाते। देवता के गूर के अनुसार मुख्य मूर्ति कहीं उत्तर पूर्व दिशा को उड़कर चली गई है परन्तु निश्चित स्थान के विषय में अभी तक जानकारी नहीं है। ऐसा विश्वास व्यक्त किया जाता है कि जिस समय मूर्ति बझोल के मन्दिर से उड़कर गई तो आगे मार्ग में खड्ड के रास्ते पर माता शंलांगरी (भद्रकाली) ने उसे रोकने का प्रयत्न किया परन्तु वह नहीं रुकी, फलस्वरूप उसी खड्ड में गांव शरोग

में एक घराट की पिछली दीवार टूट गई है जबकि इस दौरान कोई वर्षा या भूकम्प आदि नहीं आया, उसी मार्ग पर (बसन्त-पुर किंगल के पास) उसी समय एक ट्रक दुर्घटनाग्रस्त हो गया। कहा जाता है कि यह देवता की क्रूरता के कारण आगे मार्ग में चलते हुए हुआ है। यह मूर्ति ही अकेली ही नहीं इसी के साथ देव कुरूगण का एक घोड़ा जो कि वर्तमान गूर के पैदा होने पर देवता को भेंट किया था तथा जो देवता का वाहन है, वह भी देवता के साथ ही गया है।

गांव वालों ने मिलकर देवता के सामने क्षमा प्रार्थना की तथा अपने अपराधों के लिये सभी गांव वालों ने तथा देवता के कारकूनों ने दण्ड के रूप में 1-25 पै० 5/- रु० व 10/- रु० श्रद्धानुसार देवता के भण्डार के लिये भेंट किये हैं, इसी के साथ गत 21 दिसम्बर, 1986 को पुजारी के द्वारा मन्दिर में शुद्धि के लिये होम किया गया। देवता के गूर के अनुसार यदि यह मूर्ति पुनः लौट आई तो ग्रामीण इस कार्य संचालन के विषय में फिर से कभी भूल नहीं करेंगे।

द्वारपाल के गूर ने पूछने पर बताया कि देवता कुरूगण ने उसका कार्य संचालन ठीक न चलने के कारण ऐसा चमत्कार दिखाया है। यह भी सम्भव है कि वह मूर्ति अपने पूर्व स्थान में ही हो तथा किसी को दृष्टिगोचर नहीं हो रही हो और समय आने पर वह स्वयं दिखाई दे। इस प्रकार की अनेक अटकलें लगाई जा रही हैं। देवता की मूर्ति के चोरी हो जाने की कोई आशंका नहीं है। यह लेखक ने स्वयं मन्दिर जाकर में देखा कि जो मूर्ति तथा घोड़ा पहले मन्दिर में था वह दोनों ही अब वहां नहीं है।

मूर्तियों का इस प्रकार अपने स्थान से दूसरे स्थान पर स्वांय उड़-कर चले जाने की घटनाएं तो अनेक स्थानों पर अनेक बार घटी हैं परन्तु उनके अन्य स्थान पर जाने का भी पता चल जाता था। अब यह देखना है कि मूर्ति पुनः लौटती है या नहीं। यदि लौट

आए तो किस तरह, यदि नहीं तो मन्दिर में पूजा किसकी होगी तथा देवता का कार्य किस प्रकार चलेगा। ऐसी सम्भावनायें व्यक्त की जा रही हैं कि मूर्ति पुनः अपने स्थान पर लौट आएगी।

यह मन्दिर शिमला बसन्तपुर वाया धामी मार्ग पर पूर्व की ओर स्थित है। शिमला से थाची बस सेवा द्वारा यहां जाया जा सकता है। शिमला से थाची की दूरी चालीस कि० मी० है। वहां से पैदल मार्ग द्वारा एक घण्टे में बझोल पहुंचा जा सकता है

●

कोई क्षण ऐसा नहीं जो कर्त्तव्य से रिक्त हो।

—शैली

●

कवि हमें हिला देता है और पिघला देता है, फिर भी हम नहीं जानते कि कहां से और क्यों कर।

—शैली

●

संसार महापुरुषों की प्रयोगशाला है।

—हरिभाऊ उपाध्याय

जंजैहली बैऊड़ का नारायण देव

नन्द लाल

मण्डी जनपद के अन्तंगत सराज क्षेत्र के देवताओं में नारायण देवता को जंजैहली व बशलीगाड़ हारों का शासक माना जाता है। इस देवते के शासित क्षेत्र को स्थानीय बोली में हार कहते हैं। इन दो हारों में यह देवता वर्ष में दो बार हारगी के लिए ले जाया जाता है। देवता का प्रवक्ता गूर या पुजारी होता है। गूर की नियुक्ति हार के अन्तंगत किसी भी परिवार से की जाती है। इस देवता का गूर प्रायः ब्राह्मण व राजपूत परिवारों से ही होता है। हारगी का अर्थ है देव कर की हर परिवार से वसूली और यह वसूली देवता के नाम पर गूर व उसके साथ चलने वाले देव संस्था के लोग करते हैं। नारायण देवता का एक स्थान तो बैऊड़ स्थित मन्दिर है जहां पर इसकी पत्थर की मूर्ति व इसके आयुद्ध जिन्हें स्थानीय बोली में "नसाण" कहते हैं। यह लोहे के टुकड़ों से बने गाड़ने के लिए खूंटे जैसे बनाए होते हैं।

देव नारायण रथ वाला देवता है और इसका रथ भी सराज क्षेत्र के अन्य देवी-देवताओं से भिन्न है। इसका रथ हालांकि उठाया जा सकता है परन्तु स्थायी संदूक के समान है। सन्दूक के नीचे चार कोनों पर चार पदाधार (पावे) 5-5 इंच के लगे हैं। सन्दूर $2\frac{1}{2}$x2x2 फुट का बनाया गया है। इस संदूक के ऊपर इसका 3 फुट ऊंचा शरीर गोलाकार बना है। सिर का यह प्रतीक चांदी का बना है इससे ऊपर चांदी का छत्तर बना हैं चांदी के गोले का ब्यास 5 फुट है और छत्तर का ब्यास 20 इंच है। रथ का पूरा ढांचा रंग बिरंगे वस्त्रों से ढका हुआ है। इस रथ को उठाने के लिए सन्दूक के भाग में सुराख डालकर आर-

पार चार "खरींमबली" या अखरोट की लकड़ी के चार डण्डे लगाए गए हैं जो सन्दूक के बाहर आगे- पीछे दोनों ओर को 4x4 फुट हैं। इनकी मोटाई 6 फुट व्यास की है। अतः इस रथ को उठाने के लिए दो के बजाय चार आदमी लगते हैं।

देव नारायण की कोठी बड़ी और तीन मन्जिल की है। यह कोठी जंजैहली गांव में "चख" स्थान पर स्थित है। देवता का रथ इसी कोठी में रखा रहता है। हारगी के समय इकट्ठा किया गया अनाज व द्रव्य भी इस कोठी में ही जमा किया जाता है। कोठी के आज तक उसी भव्य रूप में अवस्थित रहने से इस बात का सहज ही अनुमान होता है कि देव नारायण वास्तव में इस क्षेत्र का स्थानीय ठाकुर या राणा था।

अन्य देवी-देवताओं के समान देव नारायण का भी शासन है जो आज भी देव संस्था के रूप में विद्यमान है। इस देव संस्था में निम्न अधिकारी व कर्मचारी होते हैं :-

1. गूर, 2. कटवाल, 3. कैहथ, 4. महता, 5. तहसीलदार 6. लम्बरदार, 7. बाजगी, 8. पुजारी, 9. जेलता।

इनमें से गूर का स्थान देव संस्था में सर्वोपरि माना जाता है क्योंकि गूर पर ही देवता आता है अतः वह देवता का माध्यम होता है। जब गूर पर देवता आता है अर्थात् यह विश्वास किया जाता है कि देवता की शक्ति (पौण) गूर के शरीर में समा रही है तो वह पहले आवेश में आता है अर्थात् गूर साधारण लोगों से भिन्न अतिमानवीय प्रदर्शन करने लगता है जैसे कि देवता के आयुद्धों से अपने शरीर पर प्रहार करता है। वे देवता के आयुद्धों में लोहे का भारी कड़ियों वाला सांकल जिसमें तेजधार पैनी पत्तियां भी लटकती रहती हैं या "गज" नाम के हथियार से शरीर पर प्रहार करता है, आवेश की स्थिति में गूर को आंखे लाल हो जाती हैं, जटाएं खुल जाती हैं और बालों की "लटें" इधर-उधर झूलने लगती हैं। इसके बाद जब देवता पूर्णरूप से गूर के शरीर में प्रविष्ट हो जाता है तो गूर बाते करने

लगता है। ऐसे अवसरों पर देवता का इतिहास सुनाने लगता है, जिसे स्थानीय बोली में "लहर" (गाथा) कहा जाता है। गूर द्वारा आवेश की स्थिति में बोलने को "बाक" फटना कहते हैं। अर्थात् देवता की बोली। उसके बाद गूर देव कथा, देव शक्ति के चमत्कारों की चर्चा अन्योन्य यक्षों, राक्षसों व दानवों दैत्यों से युद्धों की चर्चा करता है और अपने घर की प्रजा को चेतावनी देता है कि अगर उन्होंने सत्ता को हमेशा की तरह ज्यों का त्यों मानना जारी न रखा तो उनका सर्वनाश हो जाएगा।

इस पर घर की प्रजा गूर से उसके शान्त होने की प्रार्थना करती है और उनकी दुःख तकलीफें सुनने को कहते हैं। देवता को चूंकि चमत्कारी और अदृश्य के आर-पार देखने वाला माना जाता है इसलिए लोग अपनी समस्या प्रकट रूप में नहीं रखते। अतः प्रश्न पूछते हैं देवता की ओर से गूर पहले प्रश्न की टोह लेता है और फिर प्रश्न की ही तरह संकेतात्मक ढंग से प्रश्नों का उत्तर देता है। लोगों द्वारा अपने रोगों, पशुओं के रोगों, फसलों व मौसम के बारे में प्रश्न पूछे जाते हैं। देवता जिन-जिन समस्याओं को हल करने का दैवी अधिकार रखता है उनके उत्तर देता जाता है। यह माना जाता है कि देवताओं की शक्तियों का अलग-अलग क्षेत्र होता है देव नारायण के अधिकार में सभी कुछ आता है जैसे कई बार जब वर्षा नहीं होती और लोग देवता के गूर से उपाय पूछते हैं तो वह लोगों से गोबर के गोले बनवा-कर मंगवाता है और अपने सामने पानी के भरे पात्र (लोटा) में उन गोलों को बारी-बारी डलवाता है। यह माना जाता है कि यदि गोले डूब जाएं तो बारिश होती है। तैर जाएं तो बारिश नहीं होती परन्तु नारायण देवता अपने आप बारिश नहीं दे सकता। इस क्रिया को स्थानीय बोली में मलोडी कहते हैं।

इसके बिपरीत नारायण देवता की पत्नी देवी कसैणीं मांगे जाने पर वर्षा दे सकती हैं, ऐसा विश्वास किया जाता है।

इस प्रकार गूर देव शक्ति का केन्द्रीय पदाधिकारी व उसकी बोली का प्रवक्ता है।

कटबाल देवता का काम देव संस्था की बैठक बुलाना होता है। इस बैठक में हारगी, मेला, भोज व महत्त्वपूर्ण मामलों के लिए बातचीत की जाती है। बैठक को स्थानीय भाषा बोली में "झाड़ा" कहते है। कटबाल देवता की छड़ी को भी उठाता है (देवता की छड़ी देवता नारायण के साथ हमेशा रहती है) हारगी मेला भोज आदि के अवसर पर कटबाल देवता की छड़ी को लिए घूमता है। देवता नारायण की छड़ी लाठी के आकार की है जिसकी लम्बाई $4\frac{1}{2}$ फुट है। यह छड़ी कटबाल के हाथ में ही रहती है। यह छड़ी दण्ड का प्रतीक है ऐसा विश्वास किया जाता है कि जिस युग में नारायण देव वास्तविक शासक था तो कटबाल उसके आदेशों का पालन करवाता था। यह मात्र परम्परा है क्योंकि कटबाल किसी प्रजा जन को दण्ड नहीं दे सकता।

कैहथ :- देव संस्था में कैहथ का स्थान कोषाध्यक्ष या भण्डारी का है। कैहथ के पास ही देवता का सोना-चांदी, अनाज व वस्त्र आदि रहते हैं। देवता के नाम दिये जाने वाले जन भोजों का हिसाब-किताब, हारगी से प्राप्त कर व मेलों में इकट्ठे हुए चढ़ावे आदि का कैहथ ही लेखा-जोखा रखता है। जब देव संस्था की सभा होती तो उसमें वह हिसाब-किताब की रिपोर्ट देता है।

मेहत्ता :- देव संस्था में गूर व कटवाल से भी महत्त्वपूर्ण अधिकारी मेहत्ता होता है। राजाओं के यहां भी मेहत्ता का पद रहा है। मेहत्ता को आज की परम्परागत राजनीतिक भाषा में गृह मन्त्री भी कहा जा सकता हैं। जब कभी भी देवता के स्थान (मन्दिर या कोठी) पर या घर में कहीं भी देवालुओं के लिए व हार के प्रजा जनों के लिए भोज आयोजित किया जाता है तो उन भोजों में किसको भोजन तैयार करना

है, किस को पानी लाना है, किसको बर्तन लाने व साफ करने हैं, किसको बकरा या मेंढा काटना है इन कामों पर लोगों की नियुक्ति मेहत्ता ही करता है। भोजन बांटने का निश्चिय भी वह करता है जैसे कि देवलुओं को दुगनी मात्रा में मांस प्राप्त होना चाहिए। इस की मेहत्ता निगरानी रखता है।

तहसीलदार :- देव संस्था में तहसीलदार का पद बाद में बनाया गया लगता है क्योंकि इसका काम राजस्व अधिकारी के समान तो होता है परन्तु वह सिर्फ देवता से सम्बन्ध स्थानों की निगरानी रखता है या देव स्थानों की निगरानी के लिए हार वासिओं की ड्यूटी लगाता है। स्वीकार नहीं की जा सकती कि नारायण देव के शासन काल में तहसीलदार का पद था। यह पद तो राजा टोडरमल द्वारा जमीनों के स्थाई रिकार्ड बनाने की परम्परा/नियम बनाने के बाद अस्तित्व में आया। या फिर जब तहसील नाम से क्षेत्रीय प्रशासनिक इकाई मानी गई। देव नारायण के युग में तहसील नहीं हार नाम की प्रशासनिक इकाई थी।

लम्बरदार :- देव संस्था में लम्बरदार का पद हार से कर उगाहने वाले अधिकारी का है। असल में तो गूर पूरी देव संस्था व देव के रथ को साथ लेकर दोनों हारों में घूमता है परन्तु शासक होने के कारण देव नारायण स्वयं लोगों को कर देने के लिए नहीं कहता, इसलिए इस काम को देवता का लम्बरदार करता है। देवता का रथ हार के इस या उस गांव में किस दिन पहुंचेगा इसकी सूचना लम्बरदार, जेलते द्वारा गांव-गांव को भेजता है। अतः पूर्व सूचना होने से लोग देव कर लेकर निश्चित स्थान पर इकट्ठे हो जाते हैं। कर के रूप में इकट्ठे किए गए अनाज को भी लम्बरदार ही कोठी भिजवाता है।
बाजगी :- देव संस्था में बाजगी व जेलता प्रायः हरिजन समुदाय से होते हैं। बाजगियों में करनालें, शहनाई, ढोल, नगाड़े दमामें, थालू आदि उठाकर व बजाते हुए देवता के रथ के आगे-आगे चलते हैं। बाजगियों में नरसिंगा बजाने वाला

आवश्यक रूप में राजपूत होता है और वह सबसे आगे चलता है। बाजगी मेले में नाटी डालने वालों के साथ नाचते हुए वाद्य यन्त्र बजाते हैं जब देवता को उठाते हैं और उसे नचाते है तब भी बाजगी बड़े जोर-शोर से वाद्य यंत्रों को बजाते हैं पशु बलि देते समय व देवता की प्रार्थना गाते समय भी बाजगी वाद्य यन्त्र बजाते हैं परन्तु हरिजन वाद्य यन्त्रों को बजाने वाले बाजगियों को आज भी अलग स्थान पर बिठाया जाता है व अलग ही भोजन परोसा जाता है।

पुजारी :- देव संस्था में पुजारी भी एक महत्त्वपूर्ण अधिकारी होता है लेकिन ऐसा लगता पुजारी का पद भी बाद में ही बनाया गया क्योंकि राणाओं और ठाकुरों के शासन काल में या उनसे भी पहले कुलपतियों या क्षेत्रपतियों के राज में आर्य पूजा पद्धति के पालक ब्राह्मण पुजारी इन क्षेत्रों में नहीं थे परन्तु गैर ब्राह्मण पुजारी प्राचीन काल से सभी जातियों में होते थे। आजकल देव नारायण का पुजारी ब्राह्मण परिवार से है। पुजारी का काम देवता के निमित किए जाने वाले हर अनुष्ठान सम्पन्न करवाना होता है। जैसे देवता की किसी भी स्थान पर पहुंचने पर धूप जला कर आरती उतारना, देवता के बलि चढ़ाए जाने या देवता को भोग लगाने के समय मन्त्र पाठ करना व किसी स्थान के अशुद्ध हो जाने पर शुद्धिकरण की प्रक्रिया पूरी करना। इस क्षेत्र में अशुद्धि निम्न कारणों से मानी जाती है। (i) किसी रजस्वला स्त्री द्वारा देवता के बंधित क्षेत्र में प्रवेश, किसी हरिजन द्वारा इसी क्षेत्र में प्रवेश व जानवरों द्वारा गाय-भैस या अन्य पशुओं की हड्डियां देव स्थान में ले आना। इनके इलावा बंधित क्षेत्र में चमड़े के जूते ले जाने से भी "जूठ" फैलाती है। इसकी शुद्धिकरण के लिए पुजारी हवन का आयोजन करता है। हवन कुण्ड में तांबे का सिक्का डाला जाता है उसको गर्म-गर्म गोमूत्र में जो कि कांसे की प्लेट में रखा होता है डाल दिया जाता है अगर सिक्का सफेद हो जाए तो यह समझा जाता है जूठ गई अन्यथा नहीं।

जेलता :- देव संस्था में जेलता हरिजन परिवार का कोई व्यक्ति होता है, उसका काम कटबाल और तहसीलदार तथा

लम्बरदार द्वारा जारी किए गए आदेशों को हार के लोगों तक पहुंचाना होता है। संक्षेप में यह जेलता देव संस्था का सूचना बाहक होता है।

देव संस्था के अधिकारियों को हार की प्रजा से अपना-अपना भाग अलग से वसूल करने का अधिकार होता है। जैसे गूर को चढ़ावा देना पड़ता है। पुजारी को बलि का भाग (सिर) देना पड़ता है और बाजगियों व जेलते को रोटी और अनाज बसूल करने का अधिकार होता है। यह वसूली बाजगी व जेलता हारगी व मेले के वक्त करते हैं परन्तु प्रचलित परम्परा के अनुसार हारगी के रूप में इकट्ठा किया गया अनाज़ व धन साल में एक या दो बार जन भोज के लिए खर्च किया जाता है। इस भोज में दोनों हारों के सब परिवार आमन्त्रित रहते हैं।

देव नारायण बैऊड़ के जन्म के सम्बन्ध में तो कोई स्पष्ट कथा नहीं परन्तु इस के विवाह और दूसरे देवताओं के साथ युद्ध की कथा अवश्य मिलती है। कहा जाता है कि देव नारायण देव महादेव छत्तरी का रिश्तेदार है। उसे जंजैहली हार और बशलीगाड हार के लोगों ने छत्तरी से लाया था। देव नारायण का विवाह देवी कसैणी के साथ हुआ था। इसकी कथा यह है कि देव नारायण का विवाह देवी कसैणी से इस लिए हुआ था कि दोनों आपस में मिलकर अपनी शक्ति का इस्तेमाल प्रजा की भलाई के लिए करेंगे। देवी और देवता में शक्ति का अलग-अलग से जोश है जैसे देवी कसैणी में यह सत तप (जोश शक्ति) है कि वह बारिश दे सकती है और बारिश बन्द करवा सकती है। जब कभी भी वर्षा नहीं होती तो लोग देवी कसैणी के पास जाकर प्रार्थना करते हैं। जिससे देवी वर्षा दे देती है। वर्षा जब कभी ज्यादा हो जाए तो भी लोग बारिश को बन्द करवाने के लिए देवी से प्रार्थना करते हैं। यह लोगों में विश्वास है कि मौसम के सम्बन्ध में देवी का मुकाबला कमरु नाग के सिवाय दूसरा कोई देव-देवी नहीं कर सकता

है, दूसरे लोग देवी कसैणी को दूध-घी आदि के लिए मानते हैं ताकि उनके पशु अच्छा दूध दें। दूसरी ओर देव नारायण अच्छी फसलों तथा फसल होने तथा बीमारियों से मुक्ति के लिए माना जाता है। इन सभी विशेषताओं को देखते हुए देव नारायण और देवी कसैणी की शादी करवाई गई थी। एक लोक गाथा यह है कि देव नारायण ने यह शादी अपने आप को शक्ति सम्पन्न बनाने के लिए की थी। देव नारायण ने यह समझा था कि जब उनकी शादी हो जाएगी तो वह देवी की वर्षा वाली शक्ति को लेने में सफल हो जाएंगे। जिससे मण्डी जनपद और सराज घाटी में वह शक्तिमान समझें जाएंगे क्योंकि इस सारे क्षेत्र में लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि था। कृषि पूर्ण तौर से वर्षा पर (मौसम पर) निर्भर करती थी और बारिश के सम्बन्ध में जो देवता ज्यादा बताता था उसको लोग ज्यादा मानने लगे थे जिससे उस देवता का क्षेत्र भी फैलना शुरू हो जाता था। जिसका उदाहरण हम कमरु नाग ले सकते हैं। कमरु नाग में मौसम के सम्बन्ध में शक्ति होने के कारण यह देवता बहुत बड़े क्षेत्र का शासक है। कथा है कि देव नारायण भी अपने क्षेत्र को बढ़ाना चाहता था। इसमें काफी हद तक देव सफल भी हुआ परन्तु पूर्ण रूप से देवता इसमें सफल नहीं हो पाए। देवी कसैणी ने अपनी शक्तियों का हस्तांतरण नहीं किया बल्कि देव को कुछ शक्ति मौसम के सम्बन्ध में जरुर दी है। कुछ लोगों का यह मानना है कि देवी और देवता दोनों ने मिल करके प्रजा में फैल रहे असंतोष को दूर करने के लिए शादी की थी।

देव नारायण और देवी कसैणी के विवाह की कथा से स्पष्ट होता है कि इस क्षेत्र में पुरुष शासक तो होते ही थे परन्तु स्त्रियां भी शासक हुआ करती थीं और अपनी शासक स्थिति को छोड़ने के लिए तैयार नहीं होती थीं। देव नारायण और देवी कसैणी आपस में पति-पत्नी होने के बावजूद अलग-अलग हारों के स्वामी बने रहे। इसीलिए दोनों की कोठियां व मन्दिर अलग-अलग हैं। इनका मिलन वर्ष में दो तीन बार अलग-अलग मेलों में होता है। वे मेले के दौरान दो-तीन दिन साथ

गुजारते हैं और लोगों की नाटियों व अन्य खेलों आदि को देखते हैं। मेले के बाद अलग-अलग अपने-अपने स्थानों को लौट जाते हैं।

इस देवता की गाथा में नारायण देव और देव खमिशर में लड़ाई का वर्णन भी आता है। देव खमिशर देव नारायण का साला लगता था वह देवी कसैणी का तीसरे स्थान का भाई है। कसैणी देवी से छोटा देव चंजला (चंजवाला) है। अन्य तीन भाई हैं। देव शैटी, देव तुंगासी और देव नाग हैं खमिशर के साथ विवाद में देव नारायण पिटने के डर से भाग निकला और बचाव के लिए एक पेड़ पर चढ़ गया परन्तु पीछा करता हुआ देव खमिशर भी वहां आ पहुंचा और पेड़ पर चढ़ गया। वहां पर उसने जब देव नारायण को मुक्का मारा तो उसकी आंख में चोट लगी। इस विवाद को याद रखा गया और रिश्तेदार होने के बावजूद वे फिर कभी आपस में नहीं मिले। देवी कसैणी विवाह के बाद देव नारायण के साथ रहने के लिए भी शायद इसी कारण नहीं आई। यह भी हो सकता है कि उसके भाइयों ने देव नारायण और देवी कसैणी के राज्य को मिलने से इसलिए रोका हो ताकि उन दोनों का संयुक्त राज्य उनके लिए खतरा न बन जाए।

देव नारायण के दोनों हारों (जंजैहली हार व बशलीगाड हार) में साल में एक-एक मेला लगाया जाता है। मेले से पहले दिन जंजैहली गांव के चख कोठी से देवता नारायण के रथ को बाहर रखी शिला (पत्थर का बड़ा चकोर टुकड़ा) पर रख करके नए कपड़े पहना करके मेले के लिए तैयार किया जाता है। देवता के चांदी के आभूषणों को साफ करके पहना दिया जाता है। इस मौके पर धूप जलाया जाता है। बाजगीर बाजे बजाते हैं। जब देवता तैयार कर दिया जाता है तो बाजगीर एक खास किस्म की धुन बजा करके थोड़ा आराम करते हैं। इस खास किस्म के बजाने को स्थानीय भाषा में "बेल" कहते हैं। उसके बाद देवता को धार नामक गांव ले जाया जाता है। यह गांव देवता की बड़ी जगह मानी गई

है, स्थानीय बोली में कहते हैं कि यह देवता की 'जेठी' जगह है। इस गांव में देवता के नसाण नरसिंगे जोकि बहुत ही पुराने रखे हैं इसे देवता का जन्म स्थान भी माना जाता है। यह सारी चीजें उसके प्रतीक हैं। इसी गांव में देव नारायण शाम को ठहरते हैं। देवी कसैणी भी उनके साथ वहीं रखी जाती है। साथ दूसरे कनिष्ठ देवता, देवता घडलू, देवता गरीजनू भी उन के साथ रखे जाते हैं। ये दोनों कनिष्ठ देवता भी रथ में हैं और इनकी भी अलग-अलग हारें हैं क्योंकि ये देवता देव नारायण और देवी कसैणी के चाकर के रूप में माने जाते हैं, इसलिए इन्हें देवी और देवता के साथ-साथ ही रखा जाता है। रात को चारों रथों को धार नामक गांव में ही रखा जाता है। यह दिन श्रावण महीने का दूसरा दिन होता है, अगले दिन सुबह इसी गांव में देव संस्था की बैठक होती है जिसमें दिन के मेले के कार्यक्रम के बारे में बात होती है। दिन को 'बैऊड' स्थित देवता के मन्दिर के पास एक दिन का मेला लगता है। इस मेले में हार के लोग श्रावण महीने के शुरू का आनन्द लेते हैं। मनियारी, मिठाई आदि की कुछ दुकानें लगती हैं। लोग देवता से पूछ आदि में व्यस्त रहते हैं। दूसरा मेला जंजैहली में इसी तरह का लगता है, इसमें भी देवी देवता से लोग पूछ में लगे रहते हैं।

देव नारायण की पूजा कोठी में पुजारी और गूर दोनों करते हैं। देव की पूजा विशेष अवसरों व त्यौहारों के दिन ही की जाती है। पूजा के समय नरसिंगा और शंख बजाये जाते हैं। शंख को ब्राह्मण पुजारी बजाते हैं और नरसिंगे को गूर या गांव का कोई नौजवान बजाता है। पूजा के समय स्थानीय जंगलों से इकट्ठी की गई जड़ी-बूटियों जिसमें जट्टामांसी, भूत केशी, लक्ष्मणा, नैरे धूप व गुगल धूप आदि एकत्रित करके पूजा के लिए धूप बनाया जाता है। पूजा के समय व गूर के खेलने (घेरने) के समय लोहे के एक बड़े कड़च्छे जिसको 'धड़द' कहते हैं में धूप जलाया जाता है। देवता के मोहरे पर जो रथ के ही ऊपर होता है कुम-कुम का टीका लगाते हैं, फूल चढ़ाते हैं और भोग

के लिए हलुवा चढ़ाते हैं। इसे स्थानीय बोली में "कड़ाही चढ़ाना" कहते हैं। कभी-कभी देवता को मेडे को बलि भी दी जाती है। यह देवता बकरे की बलि नहीं लेता ऐसा माना जाता है। बकरे की बलि न लेने का सम्बन्ध साला-जीजा विवाद से जोड़ा जाता है। इसी प्रकार हारगी के दौरे में भी देव पूजा सम्पन्न की जाती है। जिन-जिन दिनों को पूजा की जाती है उनमें हर मास की संक्रान्ति, नया साल, स्थानीय दीवाली, व पंद्रह पोष जिसे इस क्षेत्र का बहुत महत्त्वपूर्ण दिन माना जाता है।

देवता नारायण का अपना एक छत्र (छतरी के आकार का एक बड़ा छत्ता) है। यह छत्र कपड़े से बना है। कपड़ा विभिन्न रंगों का लगाया गया है। इसकी डंडी लकड़ी की है लकड़ी 2" व्यास की है। छतरी को मेले के अवसर पर निकाला जाता है। इसे एक हरिजन उठाता है। वह आदमी छतरी को अपने पेट पर लकड़ी की कटोरी जोकि रस्सी से अच्छी तरह उसके पेट में बंधी होती है, में रख करके उसे घुमाता रहता है। यह हरिजन भी देवता का एक कर्मचारी होता है।

देव नारायण के जन्मदिन को एक महत्त्वपूर्ण त्यौहार मनाया जाता है जिसे 'हूम' कहते हैं। हूम यह एक ऐसा उत्सव है जो कि जन्मदिन यानी बर्थ डे है। दोनों हारों के लोग बायला स्थित देवता के मूल मन्दिर में शाम को इकट्ठे हो जाते हैं। जब ये लोग वहां इकट्ठे होते हैं तो सभी अपने साथ जलाने की लकड़ी भी लाते हैं जिनसे वहां पर आग जलाई जाती है। यह आग सर्दी से बचने के लिए जलाई जाती हैं। जब रात खूब हो जाती है तो देवता नारायण का गूर व दूसरे कनिष्ठ गूरों को मन्दिर के अन्दर लाइन में बिठा दिया जाता है। धूप आदि सबके सामने जला दिया जाता है। बाजगीर बेल बजाते हैं। यह बेल इस प्रकार की होती है कि गूर लोगों को खेल (लहर) आती है। वे बड़े जोर-जोर से चिल्लाते हैं उनके चिल्लाने की आवाजें आस-पास के गांवों में सुनाई देती हैं। गूरों को जब खूब लहर आती है तो वे मन्दिर की शहतीरियों से मन्दिर का

फेरा काटते हैं, इसी मौके पर बलियां चढ़ाई जाती हैं। एक बलि मन्दिर के छप्पर पर, दूसरी मघीरी पर तीसरी घेरे में दी जाती है और फिर सभी लोग और खेल रहे गूर वहां से तीन किलोमीटर दूर धार नामक गांव को रवाना हो जाते हैं। इस गांव को देवता की ज्येष्ठी (बड़ी) जगह माना जाता है। वहां पर पहुंचते ही बलि चढ़ाई जाती है। यहां पर गूरों की लहर समाप्त हो जाती है। इस समय लगभग सुबह का समय होने वाला होता है। बलि में बकरे के सिरों को देवता के गूर को दिया जाता है। एक सिर हरिजन गूर को भी दिया जाता है। हूम में गूर के अलावा कई देवलू भी खेलते हैं।

यह भी माना जाता है कि देवता लोग सर्दियों में लड़ाइयों आदि के लिए दूर कहीं चले जाते हैं। सर्दियों के बाद देवता जब वापस घर लौटने शुरू होते हैं तो प्रतिष्ठा या पवित्रता के लिए हवन आदि किए जाते हैं। देव नारायण के प्रतिष्ठा के दिन तो तर "घडई" (रविवार खुलाई) कहते हैं। यह तरघडई फाल्गुन संक्रान्ति के दिन की जाती है। इस दिन देवता के रण-क्षेत्र से वापस आने पर उसका फिर से हार क्षेत्र में सुरक्षित पहुंचने का स्वागत किया जाता है। लोग देवता के कुशल लौटने पर खुशी मनाते हैं। हवन किया जाता है, हवन कुण्ड में हवन सामग्री को डाला जाता है। इस दिन कुल मिलाकर चार बलियां चढ़ाई जाती हैं। बलियों को चढ़ाने का स्थान देवता का वायला में जंगल स्थित मन्दिर है। इस दिन देवता की "मघीरी" खोली जाती है। मघीरी एक ऐसा डिब्बा सा है जिसमें नारायण देवता का लिंग रखा रहता है, जिसे साल में सिर्फ एक ही बार खोला जाता है और तरघड़ई के बाद उसे फिर अगले साल तक के लिए बन्द कर दिया जाता है। देवता के चाकर हरिजन गूर को बलि का एक सिर दिया जाता है। इस हरिजन चाकर का नाम मडधूत है। यह गूर जब खेलता है तो बड़े जोर-जोर से चिल्लाता है और इस तरह चिल्लाकर देवता नारायण को अपनी बातें, परेशानियों से परिचित करवाता है।

बैऊड़ स्थित देवता नारायण का मन्दिर भी सराज क्षेत्र के दूसरे मन्दिरों की भांति विशेष तरह से तैयार किया गया है। मन्दिर का आधार स्थानीय पक्के पत्थरों से बनाया गया है। जमीन से थड़े की ऊंचाई 2 फुट की है। थड़ा 22 फुट लम्बा व 18 फुट चौड़ा है। थड़े के ऊपर चारों ओर लकड़ी की चार शहतीरियां बिछाई गई हैं। ये शहतीरियां 1x1 फुट के चकोर की है व इसके सिरे एक दूसरे से अच्छी तरह से सटाए हुए हैं। शहतीरियों के चारों छोरों पर एक-एक खम्बा लगभग इसी मोटाई का लगा हैं जिनकी ऊंचाई 5 फुट है। खम्बों के ऊपर चार और शहतीरियां उसी तरह से लगी हैं जिस तरह से नीचे वाली शहतीरियां हैं। इन का साइज भी नीचे वाली शहतीरियों वाला ही है (1x1 फुट चकोर)। इसके ऊपर को 3½ फुट तिकोने प्रकार से छप्पर के लिए अलग शहतीरियां लगाई गई हैं। छप्पर की ढलान ज्यादा नहीं है। छप्पर मोटे पत्थर के स्लेटों का है। छप्पर के ऊपर सिरे पर एक ½ फुट की शहतीरी है जोकि मन्दिर के छप्पर से बाहर की ओर है इस पर नसान (प्रतीक) लगे हैं, ये प्रतीक लोहे के हैं। मन्दिर के बीच में देवता नारायण का लिंग रखा हुआ है। यह साधारण बलुआ पत्थर का है। इसको काले रंग से लिपा हुआ है। यहां इसके ईर्द-गिर्द कुछ लोहे के 'निसान' (छड़, छजे) आदि भी रखे हुए हैं। इन पर भी काला सा रंग किया हुआ है परन्तु बहुत पुराने होने के कारण इन पर जंग भी लग गया है।

देवता नारायण का बैऊड़ स्थित मन्दिर जंजैहली से 1½ किलोमीटर दूर जंजैहली छतरी रोड के बांई ओर स्थित है। छतरी से यह 15 किलोमीटर दूर है। मण्डी से इस मन्दिर की दूरी लगभग 95 किलोमीटर पूर्व की ओर है। करसोग से इस मन्दिर को जंजैहली के रास्ते जाया जा सकता है। करसोग से इसकी दूरी लगभग 45 किलोमीटर है। यह मन्दिर हलशीखड के बांई ओर स्थित है। मन्दिर के ईर्द-गिर्द सेब के बागीचे हैं, ऊपर की ओर कायल व रई के घने जंगल हैं। मन्दिर के चारों ओर स्थानीय

पक्के पत्थरों की चार दीवारी बनी हुई है। दीवार की ऊंचाई $3\frac{1}{2}$ फुट है। पश्चिम की ओर इस दीवार के मुख्य द्वार हैं। मन्दिर की कोई भी दीवार नहीं है।

देवता नारायण के अपने वाद्ययन्त्र हैं, जिनमें नरसिंगे, करनाल, ढोल व नगाड़े हैं। इसके अतिरिक्त देवता के पास चांदी के आभूषण भी हैं। इनमें हार, छत्र आदि प्रमुख हैं। देवता के बैठने के लिए विशेष प्रकार की थड़ी बनाई गई है। बैऊड़ में बनी यह थड़ी साधारण पत्थरों से बनाई गई है। थड़ी में ऊपर बड़े-बड़े व चौड़े मोटे स्लेट जैसे पत्थर जड़े हुए हैं।

●

आस्था वह पंछी है जो भोर के उजियारे पर कालिमा तनी होने पर भी गा उठता है।

रविन्द्रनाथ ठाकुर

●

शिक्षा एकदम खुली खिड़की होनी चाहिए जिसमें हवा, ध्वनि प्रतिध्वनियां मुक्त भाव से प्रवेश कर सकें। उसे संकीर्ण और दीवारों में कैद नहीं होना चाहिए।

गुरूदेव रविन्द्रनाथ टैगोर

त्रिदेव

जया चौहान

हिमाचल प्रदेश को जहां एक ओर प्राकृतिक सौन्दर्य का वरदान प्राप्त है वहीं दूसरी ओर हमारा समाज और साहित्य दैवी कृपा और दैवी प्रकोपों से सदा प्रभावित रहा है। भारतीय साहित्य में देवता शब्द का प्रयोग एक अर्थ में न होकर अनेक अर्थों में हुआ है। समय में परिवर्तन के साथ-साथ इस शब्द का अर्थ ही नहीं बदला अपितु देवताओं के आचरण और स्वरूप भी बदल गए।

देव पूजा हिन्दू संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। इन देवताओं की संख्या तेतीस करोड़ कही गई है जिनमें प्रमुख ब्रह्म, विष्णु, महेश तथा उनकी शक्तियां सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा है लेकिन इनके इलावा अनेकों देवी देवताओं का वर्णन हमारे वेदों, उपनिषदों में मिलता है जिसमें से अनेकों को लोक-देवताओं के रूप में मान्यता प्राप्त है और प्रत्येक देवता की अपनी प्रजा है जो सुव्यवस्थित पद्धति से देवता की पूजा ही नहीं करती अपितु सामाजिक व्यवस्था को भी कठोरता से अपनाती है।

पौराणिक युग में त्रिदेव का सर्वाधिक महत्व रहा है। त्रिदेव अर्थात ब्रह्म, विष्णु और महेश, जिन्हें सृष्टि के उत्पादक, पालक तथा संहारक के रूप में माना गया है। लेकिन कहीं पर विष्णु को अधिक महत्व प्रदान है कहीं शिव की पूजा का अधिक विधान है परन्तु आदिदेव ब्रह्म की सत्ता इन दोनों की अपेक्षा कम ही है। हिमाचल प्रदेश में ब्रह्म की पूजा गाहरी या गौहरी देवता के रूप में होती है। विशेष तौर पर मण्डी तथा कुल्लू में अनेक स्थानों में गाहरी देवता के

स्थान हैं। इन देवताओं की मुख्य विशेषता यह है कि इनके रथ सिर पर धारण किए जाते हैं जबकि बहुत से अन्य देवताओं के रथ कन्धों पर उठाए जाते हैं। कुल्लू में ढालपुर के स्थान पर गाहरी देऊ का मन्दिर है। गाहरी देऊ को मण्डी रियासत का आदि देव माना गया है। कुल्लू के खोखन गांव में आदिदेव ब्रह्मा का बहुत प्राचीन मन्दिर है। यह मन्दिर ढूंगरी की पैगोड़ा शैली पर बना है। यह इस क्षेत्र के प्रमुख देवताओं में एक है। भूतपूर्व शांगरी रियासत की राजधानी बड़ाग्रां में ब्रह्मेश्वर देवता का मन्दिर है जहां पर श्रावण मास में शांचा का प्रसिद्ध मेला लगता है। कुल्लू क्षेत्र में काहिका के मेले गाहरी देवता के बिना आयोजित नहीं होते हैं क्योंकि काहिका में नड् जाति के किसी व्यक्ति को मन्त्रों द्वारा मारा जाता है। ब्रह्मा की सृष्टि को जीवन प्रदान करने वाला माना गया है। अतः केवल गाहरी देवता का गूर ही उसे पुनः होश में लाता है। ब्रह्मा की शक्ति के नाम पर भरमौर (चम्बा) से ऊपर ब्राह्मणी कुण्ड है। प्रतिवर्ष मणि-महेश के मेले पर यात्री ब्राह्मणी कुण्ड में स्नान करके ही मणि महेश की यात्रा प्रारम्भ करते हैं। मण्डी जिले के उत्तरसाल क्षेत्र में भी श्रीदेव के नाम से ब्रह्मा का मन्दिर है।

हिमाचल प्रदेश में विष्णु को नारायण देव के नाम से पूजा जाता है। नारायण के नाम पर यहां अनेकों मन्दिर हैं। विष्णु को यहां विभिन्न नामों से जाना जाता है। इनमें कुल्लू के अठारह नारायण, रघुनाथ, हरिराय, बड़ागड़ और बरशायी, विष्णु, लक्ष्मी नारायण तथा त्रिजुगी नारायण आदि प्रसिद्ध हैं। कुल्लू में विष्णु के दो मन्दिर हैं एक बड़ागड़ में दूसरा बरशाई में। विष्णु की पूजा में प्रमुखतः इनके अवतारों की पूजा सम्मिलित है। विष्णु सृष्टि का पालक है। अतः इसे चार भुजाओं वाला जो कि चार दिशाओं के संरक्षक का द्योतक है, माना गया है। वे इन हाथों में गदा, शंख, चक्र तथा कमल धारण करते हैं। जहां भी इनके मन्दिर हैं इन्हें इसी रूप में दर्शाया गया है। चम्बा के हरिराय मन्दिरमें विष्णु की चतुर्भुज रूप की बहुत ही सुन्दर मूर्ति है। विष्णु को अधिकतर लक्ष्मी

के साथ विराजमान दिखाया जाता है। संयुक्त रूप में इनकी पूजा लक्ष्मी-नारायण के नाम से होती है। समस्त हिमाचल प्रदेश में लक्ष्मी नारायण के अनेकों मन्दिर हैं। कांगड़ा के नगरोटा, पालमपुर, बीड़, ज्वाली, देवगी, चीड़ गांव, सुन्दर नगर में लक्ष्मी नारायण के सुन्दर मन्दिर हैं। चम्बा का लक्ष्मी-नारायण मन्दिर तो जगत प्रसिद्ध है। कुल्लू और मण्डी में भी नारायण के अनेकों मन्दिर है। विष्णु को जगन्नाथ के रूप में भी मान्यता प्राप्त है। बिलासपुर में रंगन्नाथ का मन्दिर बहुत प्रसिद्ध था परन्तु अब यह गोबिन्द सागर में डूब गया है।

विष्णु को अनेकों रूपों में और विभिन्न अवतारों के रूप में पूजा जाता है। इनके मुख्य दस अवतार हुए हैं। मत्स्य, कूर्म, वराह नारसिंह, वामन, परशुराम, रामकृष्ण इनमें से प्रमुखतः बुद्ध कल्कि। लेकिन रामकृष्ण, नारसिंह, परशुराम के रूप पूजित हैं। कुल्लू जिले के निरमण्ड तथा सिरमौर में रेणुका, परशुराम की पूजा के प्रमुख स्थान हैं। शिमला जिले में परशुराम को ब्राह्मणों के देवता के रूप में मान्यता प्राप्त है, यहां पर इनका रथ नहीं है (केवल नौणी में रथ है जो अभी पिछले ही वर्ष बनया गया है)। अपितु छोटा सा कमण्डल जैसा होता है जिसे "क्रो" कहा जाता है। शान्त आदि यज्ञ बिना "क्रो" के सम्पन्न नहीं होते हैं शिमला जिले में सात भटियाली है अर्थात् नौ "क्रो" है जिनमें से शान्त, भूण्डा आदि यज्ञ में पांच का सम्मिलित होना परम आवश्यक है।

हिमाचल प्रदेश में अन्य सभी देवी देवताओं की अपेक्षा शिव की अधिक मान्यता है, इसीलिए हिमाचल को शैव शाक्तों की भूमि भी कहा गया है। शिव हिमालय की प्राचीन देव जातियों के प्रमुख देवता माने जाते हैं। शिव पृथ्वी के सृजक और संहारक दोनों ही हैं। शिव का निवास स्थान कैलाश पर्वत है जो किन्नौर जिले में है। शिव का अन्य स्थान चम्बा जिले के मणि-महेश पर्वत शिखर पर भी है। वैसे तो शिव को अनेकों नामों से पूजा जाता है परन्तु सर्वाधिक प्रसिद्ध नाम महादेव है और महादेव के अनेकों मन्दिर भी हैं जिनमें कुल्लू जिले में विजयेश्वर महादेव, बिजली महादेव, शमशेरी महादेव

प्रसिद्ध हैं। इसके इलावा मण्डी में भूतनाथ, वैद्यनाथ, लाहुल स्पिति और किन्नौर में त्रिलोकनाथ के नाम से शिव के प्रसिद्ध मन्दिर है। शिमला तथा सिरमौर में "श्रीगुल तथा ईशु का महादेव से शिव की मान्यता है। श्रीगुल महादेव का प्रमुख स्थान चूड़चांदनी है। सिरमौर, शिमला, मण्डी तथा कुल्लू क्षेत्र में शिव पूजा का विशिष्ट अवसर शिवरात्रि है जो फाल्गुन महीने में देश के अन्य भागों में अलग तरीके से मनाई जाती है। इन स्थानों पर शिवरात्रि शिव विवाह के रूप में मनाई जाती है जबकि अन्य भागों में शिवरात्रि को शिव जन्म के रूप में मनाया जाता मण्डी का शिवरात्री मेला अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त है। शिव पूजा का अनुष्ठान 'नवाला' या नुग्रात्का कहलाती है। इस का आयोजन मनौती के रूप में होता है। शिव अपनी अर्द्धांगिनी के साथ संयुक्त रूप से शिव पार्वती या गौरी शंकर के नाम से पूजे जाते हैं। जिला हमीरपुर के सुजानपुर टिहरा में गौरी शंकर का प्रसिद्ध मन्दिर है। चम्बा में भी गौरी शंकर का प्रसिद्ध मन्दिर है।

●

कर्तव्य एक अत्यन्त व्यक्तिगत मामला है यह कुछ करने के लिए दूसरों के आह्वान की आवश्यकता नहीं समझता इससे कुछ कर डालनेकी आवश्यकता का बोध होता है।

माँ टेरेसा

क्यालू देवता

भवानी सिंह

शिमला जिले की तहसील जुब्बल में ग्राम रोहटान से पूर्व दिशा में जंगल क्याला के मध्य चारों ओर से देवदार के वृक्षों से घिरा इस देवता का भव्य मन्दिर है। ग्राम झड़ाशली से ढाडी-घुनसा तक लगभग 35 गांवों द्वारा देवता क्यालू की मान्यता की जाती है।

मन्दिर की बनावट आदि :- मन्दिर की बनावट को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि सम्भवतः पाण्डव काल में इस का निर्माण कार्य हुआ होगा क्योंकि इस मन्दिर की बनावट हाटकोटी में बने देवल तथा हाटेश्वरी माता व शिव मन्दिर से मिलती-जुलती है। मन्दिर के चारों ओर पत्थर की दीवार है तथा दीवार के पश्चिम भाग में प्रवेश द्वार है। इस द्वार के ठीक ऊपर देवदार के चार खम्बों पर बैठने का चबूतरा बना हुआ है। प्रवेश द्वार की लकड़ियों पर बेल बूटे तथा विभिन्न मुद्राओं में मूर्तियों की खोद कर नक्काशी की गई है, जो भी व्यक्ति देवता के दर्शनार्थ मन्दिर में जाता है वह अपने जूते जुराब तथा चमड़े की पेटी आदि को इस द्वार के बाहर छोड़ जाता है। द्वार खोलने के बाद बीच में कुछ खाली स्थान है तथा प्रवेश करते समय दाएं हाथ की तरफ देवता जी का भण्डार और रसोई है, उससे कुछ दूरी हर मन्दिर का मुख्य द्वार है जिस पर सुन्दर बेल-बूटे व धार्मिक कृत्यों से सम्बन्धित मूर्तियों की खुदाई की गई हैं। द्वार पर जिसको क्षेत्रीय भाषा में 'खोल्ली' कहते हैं पर लोगों द्वारा अपने आराध्य देव को चढ़ाये गये सिक्के कीलों में जड़े नज़र आते हैं। द्वार के मध्म बड़ा कंगण लगा है, तथा इसके ठीक ऊपर कांसे की बड़ी घण्टी लटक रही है जिसको श्रद्धालु लोग दर्शन को आते-जाते समय व वापसी पर

बजाते हैं। लकड़ी के ऊपर जो सुन्दर नक्काशी स्थानीय कारीगरों ने कर रखी है। वह कला का जीता-जागता सुन्दर उदाहरण है। मन्दिर केवल लकड़ी व पत्थर का बना है, मन्दिर के मुख्य द्वार के साथ ही अन्दर काफी खुली जगह है जो कि नींव से लगभग 25 फुट ऊपर पत्थरों की चिनाई करके बनाया गया है। इस स्थान पर देवदार के बेल बूटेदार चार मोटे खम्बे कुछ-कुछ फासले पर लगाये गये हैं। पहले यह स्थान खुला ही था किन्तु अब चोरी आदि के भय से इसको देवदार की लकड़ियों से बन्द कर दिया गया है। अब यह एक बड़ा कमरा सा बन गया है। आम लोग केवल इस कमरे तक ही जा सकते हैं इससे आगे नहीं। इसी कमरे के एक भाग में दो हवन कुण्ड बने हुए हैं, जिसमें एक का प्रयोग तो लोगों द्वारा हवन के लिए किया जाता है तथा दूसरे का देवता द्वारा विशेष हवन के लिए प्रयोग किया जाता है। इस कमरे में भी जगह-जगह घण्टियां लगी हुई हैं। प्रवेश द्वार व कमरे के अन्दर बांई ओर एक अन्य द्वार है। मन्दिर इस स्थान से दो भागों में विभक्त है। एक तरफ खुला हुआ वह स्थान है जहां पर आम लोग जा सकते हैं, दूसरा बन्द है, यहां पर केवल मन्दिर के भण्डारी व पुजारी ही जा सकते हैं। अन्य कोई नहीं। इसके पश्चात् एक अन्तिम द्वार है, इसी कमरे में देवता महाराज विराजमान या स्थापित हैं।

मन्दिर की छत :- इस मन्दिर की छत में केवल देवदार की की लकड़ी का ही प्रयोग किया गया है जोकि वर्गाकार तीन हिस्सों में ऊपर शंकु बनाती सी प्रतीत होती है। पहले छत काफी चौड़ाई लिए हुए है तथा उसको थोड़ा-थोड़ा ढलान के बाद चारों ओर से इकट्ठा कर लिया गया है। उसके पश्चात् छोटा छत बड़े की तरह ही लगाया गया है, उसके बाद तीसरा छत एक दम अधखुली छतरी की तरह तांबे की धातु की बनी है जिसको यहां की भाषा में "भीम छतरी" कहा जाता है व सबसे ऊपर तांबे के पैने कलश पर चांदी का छतर लगा हुआ है। मन्दिर की छत पर काफी छोटे-बड़े बर्तन कीलों से जड़कर लगाये हैं, जैसे टोकणा, डेकची, लोटा व तांबे आदि की तश्तरी इत्यादि। यह मन्दिर शिखर शैली का है।

मन्दिर के ठीक नीचे एक चोकोर पानी का कुण्ड बना हुआ है। पानी मन्दिर के नीचे से ही आता है तथा पत्थर के गोमुख नल के द्वारा कुण्ड में जाता है जहां पर श्रद्धालु लोग स्नान करते हैं। कुण्ड के चारों ओर पत्थर का फर्श लगा हुआ है। पहले यह बिल्कुल खुला था किन्तु कुछ समय पूर्व इस कुण्ड के ऊपर लकड़ी का छत लगाया गया है।

देवते के स्वरूप :-देवते के स्वरूप के विषय में आम लोगों को कुछ भी मालूम नहीं क्योंकि देवता के दर्शन केवल पुजारी ही करते हैं। पुजारी तथा अन्य कारकून अन्दर के दर्शन के बारे में कुछ भी नहीं बता सकते क्योंकि उन्हें इस बात की मनाही है। कुछ लोग शिवलिंग स्थापित मानते हैं और कोई गुप्तेश्वर या ठेकेश्वर मानते हैं। देवता स्थाई है, लोगों की अस्था अत्यधिक है यदि कभी लोग देवता को पूजने ले जाते हैं तो क्यालू महाराज का निशान एक लोहे की लगभग चार-पांच फुट लम्बी छड़ को ही ले जाते हैं, जिसको 'सांग' कहते हैं, सांग को देवता का पुजारी ही पूजा स्थल तक ले जाता है और वापिस लाता है।

देवता के कारकून भण्डारी :-

देवता महाराज के तीन भण्डारी तथा उन तीनों के पृथक-पृथक कार्य हैं। भण्डारी न० एक का चयन देवता द्वारा किया जाता है तथा वंशानुगत चलता रहता है यह मन्दिर के आन्तरिक पूजन तथा अन्य व्यवस्था का जिम्मेवार होता है। भण्डारी न० दो यह प्रतिदिन मन्दिर खोलता है तथा बन्द करता है व हर रोज चढ़ावे में आई राशि का ब्योरा रखता है। भण्डारी न० तीन यह मुख्य भण्डार जैसे अनाज, भांडे, बर्तन तथा अन्य इसी प्रकार की वस्तुओं के रख रखाव तथा हर वस्तु के सही इस्तेमाल का जिम्मेवार होता है।

पुजारी :- इस देवता के पुजारी पुजारली ग्राम के पुजारे हैं। वे हर रोज मन्दिर में जाकर सुबह के समय देवता की पूजा करते हैं। पूजा लगभग हर रोज ही होती है। तीन साजियों,

(संक्रान्ति) जैसे बैशाख की साजी, अषाढ़, श्रावण की साजी तथा पोष की साजी को विशेष पूजन होता है। इस देवता के कोई बाजे-गाजे नहीं हैं। पूजा के समय केवल घण्टी तथा शंख बजाये जाते हैं। पुजारी के अतिरिक्त अन्य लोग धूप-बत्ती बाहर जलाते हैं तथा यदि देवता जी को भोग चढ़ाना हो तो लोग स्वयं नहा धोकर मन्दिर की रसोई में जाकर हलवा आदि बनाकर वहीं से बरामदे में लाकर देवता जी को भोग चढ़ाते हैं।

कारदार :- उपरोक्त व्यक्तियों के अतिरिक्त कुछ कारदार भी होते हैं जोकि देवता के सम्पूर्ण कार्य को सुचारु रूप से चलाने की योजनाएं बनाते हैं- कार्य का संचालन करते हैं यदि कोई बड़ा कार्य करना हो तो ये लोग पूरे इलाके के लोगों को एकत्र करते हैं, जिसको 'खुम्बली' कहते हैं तथा फिर जो भी देवते से सम्बन्धित कोई समस्या हो उसका समाधान 'खुम्बली' द्वारा निकाला जाता है। इसके अतिरिक्त कारदार लोग देवता के आय-व्यय का हिसाब भी लिखित रूप में रखते हैं तथा जब कभी ग्राम लोग देवता की आय-व्यय का हिसाब मांगे तो वे लोगों के सामने सारा ब्योरा प्रस्तुत करते हैं।

माली :- माली उन लोगों को कहते हैं जिनके माध्यम से देवता अपने विचार व्यक्त करते हैं। इनका चुनाव देव इच्छा से होता है। आरम्भ में माली में देवता प्रकट होता है माली कई दिनों तक इधर-उधर भागता रहता हैं उसके खाने, पीने की कोई इच्छा नहीं होती और न ही वह कोई देववाणी कह सकता है। जब देवता द्वारा चुने हुए आदमी का चयन व परीक्षण पूरा हो जाता है तो उसको क्षेत्र के बड़े देवता 'बनाड़ जी' के माली द्वारा 'सिजाया' या सिद्ध किया जाता है, इसके पश्चात् माली की वाणी फूट पड़ती है तथा वह देव वाणी आरम्भ कर देता है। माली हर गांव में भी होते हैं किन्तु देवते का एक ही माली मुख्य होता है जिसको 'पीड़ी का माली' कहा जाता है, जब भी लोग अपने क्षेत्र की कोई समस्या देवते के सामने रखते हैं तो पीड़ी के माली को ही पूछा जाता है। देवते के प्रकट होने का भी विशेष ढंग है।

माली को जमीन पर बिठाया जाता है, तथा लोग भी सामने बैठ जाते हैं। उसके बाद लोग अपनी भाषा में देवते को प्रकट होने के लिए प्रार्थना करते हैं, लोग कहते हैं "ओतरू महाराज" इस शब्द का उच्चारण बार-बार किया जाता है, तब माली के शरीर में हल्का कम्पन सा आरम्भ हो जाता है जोकि उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है, जब देवता पूरे रूप से प्रकट हो जाता है तो माली सिर को झटका देकर अपनी टोपी को गिरा देता है तथा दोनों हाथ विशेष विधि से इकट्ठे पकड़ कर हथेलियों को जमीन पर मारना आरम्भ कर देता है, कुछ क्षण बाद माली लोगों से पूछेगा "केथ पगड़ो किओ" अर्थात् मुझे क्यों प्रकट किया गया है, लोग प्रकट करने का कारण देवता को बताते हैं, सारी बातें सुनने के पश्चात् देवता माली के माध्यम से कहना आरम्भ कर देता है। अपनी बात की पुष्टि के लिए माली चावल के दाने प्रश्न पूछने वाले व्यक्ति की हथेली पर रखता है और कहता है कि यदि मेरे वचन सत्य हैं तो इतने दाने चावल जैसे 5-7-9 होने चाहिएं और वे होते भी उतने ही हैं। इस पर भी यदि कुछ शंका शेष रहे तो माली गट्ठी लगाने को कहेगा, गट्ठी का मतलब है चावलों के दाने की 5-7 या 9 ढेरियां पृथक-पृथक लगाना या बैठे लोग अपने सिर पर से 5-7 टोपियां उतारकर जमीन पर रख लेते हैं तथा देवते के माली से अनुरोध करते हैं कि छुप जाये माली लोगों की ओर पीठ कर लेता है फिर लोग सबके सामने समस्या से सम्बन्धित बात करके कहेंगे कि जो शब्द देवते ने कहे हैं यदि वे सही हैं तो एक टोपी या चावल की ढेरी को चुन लेंगे, यदि बात देवता द्वारा सही नहीं तो दूसरी ढेरी या टोपी चुनेंगे तथा सब लोग ध्यान लगाकर देखते हैं, उसके बाद माली से कहा जायेगा कि गट्ठी पकड़ ले, माली अपना मुंह सामने करके लोगों से कहेगा कि गट्ठी भूल न जाना, फिर वह एक गट्ठी या टोपी को बता कर जुबानी भी कहेगा कि जो बात आप लोग जानना चाहते हैं उससे सम्बन्धित अमूक गट्ठी है, अधिकतर देवता सही गट्ठी ही पकड़ता है फिर उसका हल भी कहेगा दोषी व्यक्ति को कहेगा कि तुमने इस प्रकार का कार्य किया है जोकि मुझे मान्य

नहीं है, या तुमने किसी की जायदाद या जेवर आदि नाजायज रूप से हड़प रखा है या तुम्हारे पूर्वजों ने ऐसा-वैसा काम किया है जो नियम विरुद्ध है। यह एक न्यायालय का काम भी करता है। यदि कोई दोषी व्यक्ति है तो उसके घर में कई प्रकार का नुकसान होता है जैसे बीमारी, पशुहानि या आत्मिक अशान्ति यह सब दोष के लक्षण हैं, देवता दोषी व्यक्ति को दण्डित भी करता है, पूरे विश्वास तथा अपने प्रभाव के लिए देवता दोषी व्यक्ति को एक सप्ताह, पन्द्रह दिन जैसे भी इच्छा हो समय देता है तथा उसको अपनी राख विभूति या चावल के कुछ दाने देता है जिसको देवता निर्देशानुसार प्रयोग करना होता है। देवते का आदेश होता है कि पुनः मुझे इतने दिनों बाद प्रकट करना तथा मैं स्वयं तुम्हारे द्वारा किए गये दोष के निपटारे के लिए उचित विधि या निर्देश दूंगा। यदि दोषी व्यक्ति को देवते के कथनानुसार लाभ होता है तो वह मानी गई अवधि में पुनः देवते को प्रकट करेगा तथा दोष के निवारण हेतु विधि पूछेगा, व देवते के कहे अनुसार कार्य करने के बाद अक्सर लोग दोष से मुक्ति पाते हैं। अब से लगभग 70-80 वर्ष पूर्व तक देवता पूजन में बलि लेता था किन्तु अब बलि प्रथा पूर्णतयः बन्द है पूजन में केवल हलवा-रोट ही चढ़ाया जाता है व धूप दीप जलाया जाता है। दोषी व्यक्ति को दण्ड भी देवता द्वारा लगाया जाता है जोकि 1 रु० 25 पै० का होता है। यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य की भूमि, मकान या जेवरात हड़पता है तो देवता स्वयं उसका न्याय करता है तो देवता जब व्यक्ति दोष स्वीकार करता है तो देवता कई मामलों में अनुचित हड़पी गई वस्तु को पूरी या उसका अंश या जैसे मकान का मामला है तो देवते को चांदी का मकान बनाकर चढ़ाना होगा, यदि भूमि है तो चांदी की भूमि बनाकर चढ़ाई जाती है। इस प्रकार लोग देवी प्रकोप से सदैव बचने की कोशिश करते हैं तथा अनुचित कार्य करने से डरते हैं।

ओपरी झपट, या डायन व भूत-प्रेतों को निकालना :- क्षेत्र में कहीं न कहीं ओपरी झपट काली, डायन व भूत-प्रेतों का प्रकोप भी लोगों पर होता रहता है, इसका निवारण भी देवता

द्वारा ही माली के माध्यम से किया जाता है, इसको दूर करने की भी विशेष विधि है, जिस व्यक्ति पर प्रकोप होता है, उसको बीच में बिठाया जाता है, पूजा की सामग्री 'झपट' के अनुसार तैयार की जाती है। विशेषकर इस तरह का पूजन रात को दस ग्यारह बजे किया जाता है, यदि झपट हल्की प्रकार की हो तो रोटी तथा गुड़ से पूजन किया जा सकता है, यदि कुछ भारी प्रकार का प्रकोप हो तो कद्दू, नारियल या गरी के गोले के साथ पूजन किया जाता है। पूजन से पूर्व देवता के माली से सामग्री के विषय में पूछा जाता है तथा देवते के निर्देशानुसार वस्तुएं तैयार की जाती हैं। उसके पश्चात् अपने समय अनुसार बिना पूछे हो देवता माली के माध्यम से प्रकट हो जाते हैं तथा पूजन के लिए तैयार की हुई सामग्री को मांगते हैं, फिर पूजन आरम्भ हो जाता है। सर्वप्रथम देवता हाथ में भेखल नामक कांटेदार टहनी से प्रकोपित व्यक्ति के सिर पर दस बार घुमायेंगे, बीच में जल का लोटा तथा लोटे पर बड़ी सी रोटी और गुड़ रखा होता है। हर बार भेखल की टहनी घुमाने पर बीच में रखे लोटे आदि पर छुआई जाती है। जब यह क्रम पूरा हो जाये तो फिर हाथ में चावल के दाने लेकर सिर पर 9-10 बार घुमाने के साथ जल में डाल दिए जाते हैं फिर रोटी को घुमाया जायेगा, यदि कद्दू या नारियल हो तो वह भी इसी प्रकार सिर पर घुमाया जाता है। जब यह सब हो जाये तो देवता का माली चूल्हे से राख निकाल कर उसकी विभूती लगायेंगे उसके बाद जल का लोटा हाथ में लेकर पानी का छींटा प्रकोपित व्यक्ति के मुख पर देता है। पानी का छींटा देने के साथ ही माली जोर की आवाज़ निकालेगा, व साथ ही पांव की ऐड़ी फर्श पर जोर से मारता है उसके बाद माली तथा दो तीन आदमी सामान सहित तथा हाथ में मशाल 'जोखटी' जलाकर गांव से बाहर चौराहे आदि के पास जायेंगे वहां रोटी गुड़ आदि के टुकड़े आसमान की ओर या चारों दिशाओं की ओर डाले जाते हैं। जल का लोटा उल्टा जमीन पर किया जाता है। इस प्रकार पूजन की सभी विधि पूर्ण करने के उपरान्त गये हुये लोग वापस घर को आ जाते हैं, यदि

आवश्यक हुआ तो देवता घर पर आकर पुनः प्रकट हो जाता है तथा प्रकोपित व्यक्ति व उसके परिवार को अपना वचन देता है कि पुनः अब इस व्यक्ति पर कोई प्रकोप नहीं होगा। देवता महाराज हर तरह से लोगों के रक्षक हैं।

दूध तथा पूत देने वाला :- जिन लोगों की सन्तान नहीं होती वे देवता की मानता करते हैं तथा कई भावुक लोग तो कांटों की सेज बिछा कर उस पर भूखे-प्यासे सो जाते हैं, उनके श्राप से बचने के लिए देवता माली में स्वयं प्रकट हो जाता है तथा पीड़ित लोगों को आश्वासन देता है। बहुत से लोगों को देवता द्वारा सन्तान प्रदान की गई है। इसके अतिरिक्त पूरे क्षेत्र में इसको दूध के देवता के के रूप में अत्यधिक प्रसिद्धि है, अब से 45-50 वर्ष पूर्व तक कोई भी व्यक्ति दूध का सेवन नहीं कर सकता था उसको देवता का 'हारषा' अर्थात् प्रतिबन्धित समझा जाता था किन्तु जब लोग चाय आदि से परिचित हुए तो लोगों ने देवता से विनती करके यह पाबन्दी उठवा दी, किन्तु अब भी यह नियम है कि जब गाय ब्याहती है तो ब्याहने से 14-15 दिनों तक दूध घी व छाछ का प्रयोग नहीं किया जा सकता। गाय के ब्याहते ही भेखल (कांटेदार) की टहनी मकान के बरामदे या छत में लगाई जाती है। इस ठहनी के लगाने का यह प्रयोजन है कि हरिजन आदि मकान को न छुए। वह इतने दिनों तक 'हारषा' है यदि भूल से या जान बूझकर कहीं हरिजन मकान को छू जाये तो इससे बहुत नुकसान होता है। 14-15 दिनों तक दूध घी की हर तरह से सफाई रखी जाती है। गाय को 'लाम्बड़' आदि भी सफाई से बनाया जाता है, यह विशेष ध्यान रखना पड़ता है कहीं कोई जूठन आदि गाय के लिए बनाए गए लाम्बड़ में न पड़ जाये। दूध, घी, छाछ के बर्तनों को प्रयोग करने के उपरान्त हाथ भली प्रकार साफ करने पड़ते हैं। यदि दूध घी वाले हाथों से ही खाना आदि खाया तो भी हानि होती है। 14-15 दिनों के बाद सुबह के गाय के थन को धोकर एक गिलास दूध पृथक रखा जाता है, उसके बाद घी तथा दूध को देवता जी के मन्दिर में चढ़ाने के लिए ले जाया जाता है वहां पुजारी घी तथा दूध देवता जी को चढ़ाता है घी का दीपक जलाता है

लोग इसके साथ-साथ हलवा आदि व नकदी भी देवता जी को चढ़ाते हैं, तदोपरान्त घर पर आकर छाछ को भी उंगलियों से छींटा देकर देवता जो का ध्यान करके चढ़ाया जाता है। इसके साथ एक यह भी नियम है यदि गाय पहली बार ब्याही है तो उसका घी पुन: देवता जी को चढ़ाने के लिए किसी शीशे या कलईदार बर्तन में रखा जाता है, व उसको नियम समय में ही चढ़ाया जाता है। एक यह भी पाबन्दी है कि ऐसी गाय का घी, दूध व छाछ हरिजनों को नहीं दी जा सकती। 14-15 दिनों के पश्चात् जो चढ़ावा घी दूध का मन्दिर भेजा जाता है उसको 'लअण' कहते हैं। नई ब्याही गाय का जो घी देवते के बन्धेज का गखा जाता है उसको 'पगारी कहा जाता है। जब पागरी देवते को अर्पण की जाती है तो उस समय देवता माली पर प्रकट होता है। घी को हल्का गर्म करने के बाद कांसे की थाली में डाला जाता है तथा माली थाली को दोनों हाथों से पकड़कर घी को पी जाता है, उसके बाद कहता है कि पगारी ठीक है या उसमें कोई कमी रह गई है, यदि कमी कहे तो पुन: इसी प्रकार करना पड़ता है।

यदि देवते के गाय सम्बन्धी नियमों में कोई असावधानी बर्ती गई तो इसके बहुत दुष्परिणाम निकलते हैं, जैसे गाय दूध देना बन्द कर देगी या पांव मारना आरम्भ कर देगी या दूध की जगह खून देना शुरू कर देगी यदि ऐसा नहीं तो दूध तो मिल गया, जम भी जाता है किन्तु जब उस को मथना आरम्भ कर दो तो मक्खन नहीं बनेगा चाहे कई उपाय किए जायें, कायाबी नहीं होगी। छाछ इतनी बुरी बनेगी कि मुंह के सामने नहीं ला सकेंगे, उसमें से बदबू आती है हार कर दूध फेंकना पड़ेगा और यह विश्वास करने पड़ेगा कि हम से कोई भूल हो गई है तथा इसी से देवता हम पर कुपित हो गये हैं, अन्त में देवता की शरण में जाना पड़ेगा। वे अपने माली के द्वारा दोष बतायेंगे तथा उस को दूर करने के लिए उचित दण्ड देंगे। देवता अपने मन्त्रयुक्त चावल के दाने या सफेद पत्थर का छोटा कंकर देंगे तथा उसकी विधि बताएंगे, जिसके प्रयोग से सब कुछ ठीक हो जाता है। दूध के बारे में देवता जी की सख्ती पर लोगों ने कहावत भी बना रखी

है जो कि ऐसे लोगों पर लागू होती है जो थोड़ी सी बात का भी बुरा मानते हैं वह है "तांऊबे न ऐहो झाणिया जेहो क्याल रो हारषों टल्लो" अर्थात् तुम तो इतने गुस्से हो जाते हो या बुरा मानते हो जैसे क्यालू देवता अपने हारषे (प्रतिबन्धिता) में अनियमिता हो जाने पर क्रोधित होते हैं।

देवता के सहायक वीर :- क्यालू देवता के साथ कई कालियां व वीर है,जैसे नारसिंह वीर, भंखोट का वीर पोखू (महावीर) कश्रलू, शेड़कुल्लिया आदि ये अपने श्रेष्ट दे क्यालू कहने के अनुसार चलते हैं तथा दोषी व्यक्ति के घर पर विभिन्न प्रकार के उपद्रव करते हैं। जब दोषी अपना दोष स्वीकार करता है तो फिर देवता क्यालू पूजा के समय उन्हें शान्त व वश में करता है और वे दोषी का घर छोड़ देते हैं इस प्रकार वे सिपाही का कार्य सा निभाते हैं।

देवता की भूमि :- वैसे परोक्ष रूप से देवता क्यालू यहां के सभी लोगों की भूमि का मालिक है किन्तु इसकी कुछ निजी भूमि भी है जोकि लोगों को सालाना ठेके पर दी जाती हैं। इसके अतिरिक्त देवते का सेव का बागीचा भी है।

देवता के आय के साधन :- देवता की आय का मुख्य साधन चढ़ावे से आने वाली राशि है। कुछ बागीचे से तथा ठेके पर दी गई जमीन से भी आय होती है। इसके अतिरिक्त गेहूं व धान की फसल पर लोग देवते के भण्डार के लिए 2-4 पथ्थे के हिसाब से चढ़ावा देते हैं जिस को 'कूत' कहते हैं। चढ़ावे के अतिरिक्त देवता द्वारा दोषी व्यक्तियों को लगाये गए दण्ड से भी आय होती है। देवता की आय इतनी है कि मन्दिर का सारा व्यय आसानी से पूरा हो जाता है।

देवते के वार्षिक एवं असामयिक मेले :- देवते क्यालू के निजी कोई भी मेले नहीं होते। मेलों में अधिकतर यह इस क्षेत्र के बड़े देवता "बनाड़" के साथ ही सम्मिलित होते हैं। वर्ष की तीन साजियों बैशाख की साजी, में आषाढ़, श्रावण की साजी तथा पोष की साजी को दर्शनार्थी लोग काफी संख्या

एकत्रित होते हैं। लोगों द्वारा इन दिनों बड़ी मात्रा में भेंट व चढ़ावे चढ़ाए जाते हैं व विभिन्न क्षेत्रीय समस्याओं पर भी विचार-विमर्श किया जाता है। अब से चार वर्ष पूर्व इसी मन्दिर में शिवपुराण का पाठ भी करवाया गया था। जिसमें लोगों ने सफल बनाने के लिए पूर्ण सहयोग प्रदान किया। इसके साथ-साथ देवता स्नान करने बद्रीनाथ तथा केदारनाथ की तीर्थ यात्रा पर भी 30-35 वर्ष बाद जाया करते हैं तथा यात्री लोग यहां से बद्रीनाथ-केदारनाथ तक पद यात्रा करते हैं। यात्री लोग यात्रा के दौरान केवल दिन में एक बार खाना खाते हैं। यात्रा से वापसी पर देवता की ओर से क्षेत्र के तथा अन्य लोगों को धाम दी जाती है। श्रद्धानुसार इस धाम के लिए लोग अपनी ओर से राशि प्रदान करते हैं तथा खाने आदि का भी लोग ग्राम अनुसार मन्दिर में ही व्यवस्था करते हैं।

इसके अतिरिक्त 50-60 वर्ष या इससे कम अथवा ज्यादा अवधि में यहां पर एक विशेष मेला होता है, जिसको 'शान्तड़ी' कहा जाता है। उस समय लोगों की काफी भीड़ होती है। 15 दिन पूर्व इस क्षेत्र के बड़े देवता जो 'बनाड़' तथा 'देशमौलिया' भी यहीं पधार जाते हैं। शान्तड़ी से पूर्व 15 दिनों से जप आरम्भ हो जाता है. जिस रोज शान्तड़ी होती है उस दिन काफी रौनक होती है। लोग बहुत सुबह ही मन्दिर के चारों ओर एकत्रित होने शुरू हो जाते हैं। इसमें देखने योग्य एक विशेष बात यह है कि अन्य दिनों सभी हरिजन (कोली) लोग मन्दिर के ऊपर वाले मार्ग से नहीं आ जा सकते, किन्तु इस विशेष अवसर पर अन्य हरिजन तो नहीं केवल झगटान ग्राम के हरिजन (कोली) देवते के खूंद बनकर इसी रास्ते से आते हैं। ये लोग शान्तड़ी के एक माह पूर्व से ही प्रतिदिन स्नान करेंगे व अपने हाथों खाना बनायेंगे। अपनी पत्नी बच्चों के सम्पर्क से दूर रहेंगे। शान्तड़ी वाले रोज ये लोग सजधज कर व हाथों में धनुष-बाण, तलवारों आदि से लैस होकर जाते हैं क्याला मन्दिर से कुछ दूरी पर 'शंगराली नामक जगह से ये हरिजन लोग नाच कर मन्दिर की ओर बढ़ते हैं। कुछ दूरी पर इवकी अगवानी

करने के लिए देवता 'देशमौलिया' जी की साज-बाज सहित आते हैं, आगे-आगे देवता जी की पालकी चलती है व उसके पीछे इन नाचने वालों का दल झूमता हुआ चलता है और धीरे-धीरे मन्दिर के समीप पहुंच जाते हैं तथा वहां कुछ रस्म रिवाजों व पूजन को पूरा करने के बाद यह पूरा दल देवता सहित मन्दिर के चारों ओर नाचते हुए चक्कर लगाते हैं, जिस को 'फेर' कहा जाता है, फेर पूरा होने के पश्चात् मन्दिर की शिख अथवा शिखर की पूजा की जाती है 15-20 लोग शिखर पर चले जाते हैं। पण्डित लोग कालियों की अराधना करते हैं। उन्हें निमन्त्रण देकर बुलाते हैं तथा पूजने के पश्चात् उन्हें सम्मान सहित वापस भेजते हैं, पूजा की विशेष पद्धति होती है। पण्डित लोग मन्त्रोचारण बहुत ही मधुर धुन में करते हैं, उनके हाथों में चांदी की बनी बड़ी-बड़ी कड़छियां होती हैं जिनको धुड़ूस कहते हैं। इनमें जले हुए कोयले डाले जाते हैं तथा कोयलों पर घी हवन सामग्री आदि डाली जाती है। एक ओर देवता जी के माली भी पूरे जोश से दिशाओं की ओर बीच-बीच में आटा-चावल के दाने फैंकते रहते हैं। कुछ धनुष से वाण छोड़ते रहते हैं और कोई बने हुए पकवानों के टुकड़े चारों दिशाओं में डालता नजर आता है। उधर ढोल-नगारे, करनाल, रणसिंगा की आवाजों से वातावरण गुंजायमान होता रहता है। बीच-बीच में बन्दूकों व अन्य धमाकों की ध्वनि भी सुनाई देती है। सभी लोंगों की आंखें एक टक शिखर की ओर लगी रहती हैं जब पूजा निवृत होने जा रही हो तो देवते का पुजारी लाल व सफेद कपडों की दो 15-20 फुट लम्बी चीरों को लेकर भीम छतरी में बांधता है। उसके पश्चात् जयकारों से वातावरण गुंजायमान हो जाता है। श्रद्धालुओं द्वार मन्दिर की छत में विभिन्न प्रकार से बर्तन कीलों से लगाये जाते हैं। इस तरह शिखर पूजन समाप्त हो जाने के बाद सभी लोग नीचे उतर जाते हैं। उसके उपरान्त लोग धाम में सम्मिलित हो जाते हैं।

नवरात्रों में भी इस मन्दिर में जाप तथा हवन किए जाते हैं। बैशाखी के दिन इस मन्दिर में हरिजन (कोली) लोग एकत्र होते हैं, अपने आराध्य देव से सम्बन्धित गाने गाते हैं

व दो टोलियों में नाचते हैं, इनको देखने के लिए काफी भीड़ जमा हो जाती है, ये लोग विभिन्न करतब दिखा कर दर्शकों का भरपूर मनोरंजन करते हैं। इन्हें 'बूढ़े' कहते हैं।

देवता जी में पूर्ण श्रद्धा व आपसी मेल-जोल :- देवता क्यालू में सभी वर्ग के लोगों वृद्ध, युवक, बच्चे व सभी जाति के लोगों की पूर्ण आस्था है। लोग दुष्कर्म करने से कतराते हैं हैं व देव कोप से बचे रहने का प्रयत्न करते हैं। अधिकतर मन्दिर में एकत्र होने से आपसी मत-भेद या समस्याएं आसान से दूर हो जाती हैं। यदि कभी गुट बन्दी हो भी जाती है तो देवता को मध्यस्थ मान कर उनको मानी के द्वारा प्रकट किया जाता है वो जो भी निर्णय दे वह सर्वमान्य होता है। आज का शिक्षित वर्ग व सभ्य वर्ग भी देवता जी को श्रद्धा से मानते हैं। देवता निष्पक्ष न्याय करता है। वे अमीरों को दण्ड देने से नहीं सुकुचाते और न ही निर्धन के ऊपर दया करते हैं। यदि कोई भी गल्ती करता है उसको दण्ड ही भोगना पड़ता है।

यदि देवता के कारकून या माली, पुजारी कोई गल्ती करते हैं तो उन लोगों को भी देवता द्वारा ही दण्डित किया जाता है आम जनता द्वारा नहीं। दिन-प्रति-दिन लोग देवता के प्रति आस्था बढ़ती ही चली जा रही है।

●

गसौंता महादेव

डॉ. वेद प्रकाश 'अग्नि'

कुछ समय हुआ जबकि मेरी नियुक्ति प्राचार्य के रूप में हमीरपुर में हुई तो वहां पर सांस्कृतिक महत्व की वस्तुओं के विषय में जानकारी प्राप्त करने की मेरी जिज्ञासा स्वाभाविक रूप से जागरूक हुई। जिन स्थानों के विषय में मुझे पता चला है उनमें से तीन को रेखांकित करना महत्वपूर्ण समझता हूं। इनमें से एक स्थान टौणी देवी के पास का है, जहां ऋग्वेदीय ब्राह्मण परिवार द्वारा राजकुल के किसी राणा की प्रणव-कला में अभ्यस्त उन साधकों ने अभिमन्त्रित खड़ग देकर शत्रुओं पर विजयी होने का अपार वर्चस्व दिया था। उनकी स्मृति की खड़ग तो अब उपलब्ध नहीं है परन्तु उसकी चमत्कारिता की कसौटी के प्रमाण के रूप में वहां ही समीपस्थ ग्राम की विशाल चट्टान के तीन खण्ड उस खड़ग के द्वारा चीरे हुए अब भी विद्यमान हैं।

दूसरा महत्वपूर्ण स्थान है राजा तेगचन्द द्वारा स्थापित सासनी का शिव मन्दिर जो सं० 1385 में बना हुआ है। कभी यह नागा-सम्प्रदाय का प्रशस्त साधना केन्द्र रहा था। अब विपन्न दशा में है। वर्तमान बानगिर महात्मा कुछ सिद्ध औषधियों के अभ्यस्त साधक हैं। यह स्थान सांस्कृतिक जीर्णोद्धार की अपेक्षा रखता है।

इन स्थानों की अपेक्षा सिद्ध बाबा बालकनाथ के स्थान को छोड़कर जो और सबसे अधिक उत्तम साधना केन्द्र रहा है वह है श्री गसौता महादेव का। गसौता महादेव हमीरपुर से जाहू मार्ग पर कोई 10-11 कि० मीटर की दूरी पर गसौती नदी के रोडपुल से लगभग दो फरलांग दाईं ओर बड़ी ही

एकान्त और शान्त जगह पर है। गसौती नदी मण्डी जिला में पड़ती है। दूसरी ओर छोटी स्रोतस्विनी जाम्बली है। लगता है इस मध्यभाग में कभी जावाली ऋषि ने तप किया था। इस तरह दो स्रोतस्विनियों के मध्य में विराजमान "शिव" को गसौता कहा जाने लगा, जिस ज्योतिलिंग के दोनों ओर दो स्रोतस्विनियां प्रवाहित होती हैं वह 'गसौता' महादेव है।

गसौता महादेव स्वयंभू ज्योतिलिंग है। कहा जाता है कि यह शिवलिंग हल चलाते हुए किसी खेत में महाराजा संसार चन्द के भी बहुत पहले (कुछ लोक श्रुतियां इसे दसवीं शती तक भी खींचती हैं) प्राप्त हुआ था जबकि हल की ठोकर से पहले दूध और फिर खून की धारा उससे बही थी। खेतीकार खेत छोड़कर भाग निकले थे। बाद में लम्बलू ग्राम के किसी जमींदार को जो निःसन्तान थे (आकाशवाणी) सुनेन्द्र हुआ कि वह ज्योतिलिंग को सुखपाल में उठाकर विधिपूर्वक उसकी प्रतिष्ठा कराएं तो उनका वंश चलेगा। ऐसा करने पर वर्तमान स्थान सुखपाल भारी होने से इसी जगह पर गसौता महादेव की स्थापना कर दी गई। एक वर्ष के बाद जमींदार के पुत्र के सन्तान हुई। उसकी प्रसन्नता का कोई ठिकाना न रहा तो उन्होंने सौ घुमाऊं अर्थात् 800 कनाल जमीन इस मन्दिर की सेवा में लगाई। जिससे अब तक वहां की सेवा व व्यय आदि चलता है, यद्यपि कुछ लोगों ने भूमि पर अधिकार कर रखा है।

कहा जाता है गिरनार के 'दत्त गुरू' की परम्परा का स्वयं लिंग इस ज्योतिर्लिंग की यह विशिष्टता है कि यह अर्द्ध नारीश्वर रूप में स्वतः निर्मित हुआ माना जाता है। ज्योतिर्लिंग में गौरी पीठ और पार्थिव की अभिन्न मुद्रा इतनी कलात्मक है और उच्छून मुद्रा है कि देखते ही बनती है।

जनपदीय लोग यहां पशुधन की रक्षा के लिए प्रार्थना करते हैं, दूध से अभिषेक करते हैं। अन्य प्रकार की आधिदैविक व्याधियों से मुक्त होने से रक्षा करने के लिए प्रार्थनाएं करते हैं जिनसे उन्हें लाभ होता है।

यहां पर शिवरात्रि और निर्जला एकादशी का विशेष उत्सव मनाया जाता है। चिरकाल से यहां 'पशुओं की मण्डी' का मेला भी लगता है।

यहां का कदली वन देखने पर तो पौंगबान्धमग्न कश्यपेश्वर महादेव की बाड़ी की याद ताजी हो जाती है। लगता है जैसे कोई वैदिक कालीन आश्रम स्वाहा-स्वधा के मंत्रों से सहसा मुखरित हो उठा हो और जाबाली और गसौती स्रोतस्विनियां उसके स्वाहाकार में अपनी प्रणवकला को मिलाकर नाद बिन्दु कलात्मक गसौता महादेव का स्तवन कर रही हों। हिमाचल प्रदेश में कुछ जनपदों में प्रचलित लोक विश्वासों के अनुसार अप्सराओं को गासी कहा जाता है। गासी शब्द से आकाशी या आकाशचारी का तात्पर्य भी सार्थक हो जाता है। गसौता महादेव गसौती खड्ड अर्थात् अप्सराओं से सेवित नालेम है।

●

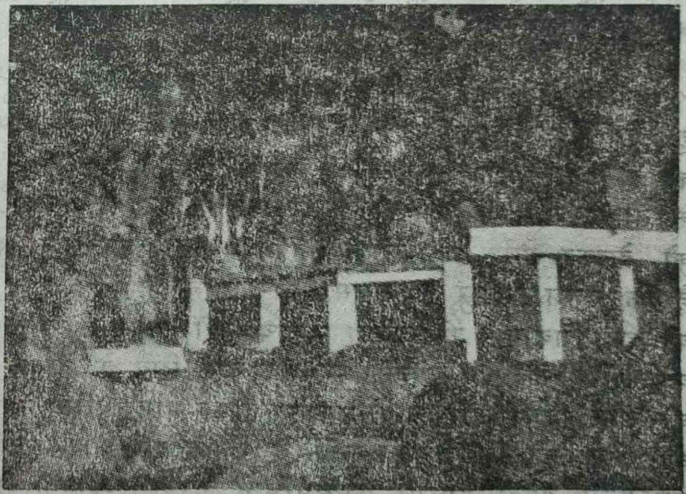

शिव मन्दिर त्रिलोकपुर

त्रिलोकनाथ मन्दिर, त्रिलोकपुर : बाह्य परिदृश्य (छाया : गिरिधर योगेश्वर)
पो. गुलेर-176033, जिला कांगड़ा (हि. प्र.)

नलग क्षेत्र का इष्ट—देव जीजड़

सतीश

जिन गुणों से लोक की रक्षा होती है, जिन गुणों को देखकर हमारा हृदय प्रफुल्लित हो जाता है उन गुणों को हम जिसमें देखें वही 'इष्ट देव' है, हमारे लिए वही सब से बड़ा है।

तुलसी जप तप नेम व्रत सब सबही तें होई
लहै बड़ाई देवता 'इष्ट देव' जब होई।

इष्ट देव भगवान के स्वरूप के अन्तर्गत केवल उनकी दया दाक्षिण्य ही नहीं, असाध्य दुष्टों के संहार उनको अपरिमित शक्ति और लोक मर्यादा पालन भी है।

नलग क्षेत्र के देवता 'जीजड़' का सम्बन्ध बहुत पुराना है। देव जीजड़ के जन्म के पूर्व एक बार शिव और शक्ति के वैमनस्य की बात आती है। वैमनस्य का कारण शिव, शक्ति और गणेश के वाहन रहे। शक्ति की शिकायत थी कि शिव के विषधर भूषण को देखकर गणेश का वाहन मूषक भयभीत होकर इतना भागता है कि गणेश उस पर से अकसर गिर जाता है। शिव ने शक्ति की इस शिकायत को ज्यादा महत्त्व नहीं दिया। आखिर हार कर शक्ति ने अपने वाहन शेर का रूख शिव के वाहन नन्दी की ओर किया और नन्दी भयभीत होकर भागा। शिव ने पार्वती को आज्ञा दी कि शेर को नन्दी के विमुख करो शक्ति नहीं मानी वह पहले अपनी समस्या का समाधान करवाना चाहती थी, बात बढ़ती गई और अन्ततः शिव अपनी इस पारिवारिक समस्या को लेकर विष्णु भगवान के पास समुद्र में गए। आवभगत करने के बाद शिव ने अपनी समस्या विष्णु के सामने रखी। शिव ने अपने लम्बे परिवार की शिकायत की और कहा कि ये मेरे

वश की बात नहीं है। इस परिवार पर मेरा नियन्त्राण हो ही नहीं सकता। विष्णु ने उत्तर दिया कि परिवार तो मेरा भी वश में नहीं है। मेरी एक पत्नी (सरस्वती) वाचाल है दूसरी पत्नी प्रकृति मुखर चंचल है। पुत्रा कामदेव है जिसने सारे संसार में उथल-पुथल मचा रखी है। इन सब पर तो मेरा भी अधिकार नहीं है, मेरा अपना जीवन भी परस्पर विरोधी तत्वों से पूरित है। मैं शेष-नाग की शैय्या पर समुद्र में सोता हूं। मेरा वाहन गरुड़ है। गरुड़ स्वभाव से ही नाग विरोधी है। अतः घर के वैमनस्य को अब तक कोई भी हल न कर सका। अतः पारिवारिक मन-मुटाव की बात छोड़ कर घर लौटो। मात्र घर छोड़ने से ही पारिवारिक समस्या का हल नहीं ढूंढा जाता। समय आने पर इस समस्या का समाधान स्वयं होगा। शिवजी घर आए, इस पर शक्ति ने उन्हें ताना मारा क्योंकि विष्णु से मिले जवाब का उन्हें पता चल चुका था, वे शक्ति के इस ताने को सहन न कर पाये, उन्होंने तत्काल गृहस्थी छोड़ दी। तपस्वी जीवन-यापन करने का निर्णय लिया और अकेले ही जंगल की ओर गए। धामी रियासत के हलोग स्थान से लगभग चार किलो-मीटर दूर स्रोत के टिब्बे पर वे मन्त्रा साधना में जुटे, उन्होंने शक्ति को छोड़ दिया था। अतः शिव का वह रूप न रह गया, शक्ति के त्याग के कारण "f" की मात्रा छोड़ 'शव' का ही रूप रह गया था। कुछ काल पश्चात् देवों की सभा में उनकी आवश्यकता पड़ी, देवों ने शक्ति से शिव के बारे में पूछा परन्तु शक्ति को उनके बारे में कुछ मालूम नहीं था। इस पर उन्होंने पुरोहित गर्ग जी से पूछा कि शिव कहां है? उन्होंने अन्तर्दृष्टि से देखा कि वे 'शव' के रूप में एक पहाड़ी पर बैठे हैं। सारे देवता वहां एकत्रा हुए। ऋषि गर्ग ने उन्हें मन्त्रा के द्वारा जगाया, इस जागने से उन्हें अत्यन्त क्रोध आया। इस क्रोध के कारण वाष्प रूप से निकले उनके श्वास ने देवता का रूप धारण कर लिया—शिव के श्वासों के वाष्प से उत्पन्न उस देवता को ही जीजड़ कहते हैं। तत्पश्चात् गर्ग मुनि की मनोस्थिति में परिवर्तन हुआ। उसमें विकार उत्पन्न होने के कारण विभूति निकली जो गर्ग गोत्रा के नाम से प्रसिद्ध देव कला प्राप्त देव भडांगल (बाहली) क्षेत्र में है। यह स्थान भी धामी क्षेत्र के

ही अन्तर्गत आता है। देव जीजड़ का मूल स्थान बठमाणा बताया गया है। इसके बाद इस देव का दूसरा स्थान घनाहट्टी के पास 'देवनगर' में बना, उसके बाद यह देवता 'नलग' पहुंच गया, उसकी भी एक अपनी कहानी है। नलग गांव तक किसी जमाने में क्योंथल क्षेत्र की सीमा थी, उस समय यहां का शिरगुल देवता था। सारे क्षेत्र में उसकी मान्यता थी। किसी कारण से देव जीजड़ और शिरगुल के बीच तकरार पैदा हो गई। अपने आपको अधिक बलशाली समझने वाले देव जीजड़ ने शिरगुल का क्षेत्र भी अपने अधिकार में लाने की बात सोची परन्तु शिरगुल नलग वासियों का इष्ट देव होने के कारण उसकी सीधे पकड़ में आसानी से न आ सका। अतः जीजड़ देव ने शिरगुल को धीरे-धीरे परेशान करता आरम्भ कर दिया। एक बार जीजड़ बिना शिरगुल की पूर्व अनुमति के उसके क्षेत्र से होता हुआ अन्यत्र जा रहा था। इस अनाधिकार प्रवेश पर दोनों में कहा सुनी हो गई और जीजड़ ने एक पर्वत खण्ड उठाकर शिरगुल को उसके नीचे दबा दिया। यह स्थान अब भी वर्तमान नलग गांव से लगभग $2\frac{1}{2}$ किलोमीटर दक्षिण की ओर है। इस घटना के बाद जीजड़ नलग वासियों का ग्राम देवता बन गया। वर्तमान समय में इसकी लगभग 10-12 इन्च की अष्टधातु की प्रतिमा है। इसकी प्रतिमा के साथ-साथ गण देवता, दानों व देवी जिसे "झाला री" भी कहते हैं, की भी मूर्तियां हैं। 'गण' हिमाचल के भज्जी क्षेत्र में एक मात्र ऐसा देवता है जो कि भैंस के दूध से प्रसन्न होता है। इस देवता को भैंस का दूध अर्पण करते हैं। इसको छोड़ कर कोई भी देवता इस क्षेत्र में भैंस का दूध स्वीकार नहीं करता। इसका पुजारी ग्राम्य बोली में ही इसकी अर्चना पूजा करता है। इधर इस गण का सम्बन्ध शिवजी के गणों से जोड़ा जाता है। यह गण ग्राम का रक्षक माना गया है।

दानों भी इसके ही साथ का देवता है। यह त्रेता युग में सौम्यपुर का राजा था, इसकी मान्यता भज्जी क्षेत्र में प्रायः एक समान है, यह पुराणों में वर्णित सहस्त्रबाहु ही का एक रूप है। दत्तात्रेय जिन्हें स्वयं शिव का अंशावतार स्वीकार किया

गया है ने सहस्त्रबाहु को एक सहस्त्र भुजायें दान में दी थीं परशुराम ने सहस्त्रबाहु को युद्ध में मारा। लोक गाथाओं व पुराणों में परशुराम व सहस्त्रबाहु का वैर जगत प्रसिद्ध है।

देव जीजड़ का अपना रथ है, यह चकोर आकर का काष्ठ का रथ होता है जिसे मेलों जात्रा के दिनों में या विशेष अवसरों पर सजाया संवारा जाता है। रथ को पहले रंग बिरंगे कपड़ों द्वारा सुसज्जित करते हैं, ये वस्त्र लगभग सवागज लम्बे प्रिन्टिड खद्दर के होते हैं। स्थानीय बोली में इन वस्त्रों को 'छोड़' कहते हैं। इस रथ के सिरे पर एक चांदी का कलश लगाया गया है। फिर इस पालकी पर देवता व अन्य गौण सहयोगी देवताओं के मोहरे क्रमवार सजाये जाते हैं। रथ के सामने मुख्य देवता जीजड़ का अष्टधातु का मोहरा रहता है। इस रथ को उठाने के लिए लगभग आठ-आठ फुट के दो मजबूत सूखी लकड़ी के डंडे इसके बीच में फंसाये जाते हैं। इनके काष्ठ पर बाहर से कपड़ा लपेट कर उन्हें सजाया जाता है। इन डण्डों को कन्धों पर रख कर देवता को उठाया जाता है। मेलों-त्योहारों के समय देव मोहरों को इस रथ पर सजाकर मन्दिरों से बाहर निकाला जाता है और गांव के प्रांगण में उन्हें वाद्य यन्त्रों की सुमधुर ध्वनियों के संग नचाया जाता है। लोग उन की मनौती मानते हैं। गूर या मुख्य चेला देवता का अधिवक्ता होता है। वह प्रायः आवेश में आता है उसमें देवता की आत्मा प्रवेश करती है, उसके शरीर में विशेष कम्पन उत्पन्न होता है। इधर बजन्तरी लोग इस मौके पर एक विशेष धुन छेड़ कर देवता को वाणी रूप में प्रकट होने की प्रार्थना करते हैं। देवता के अन्य कारिन्दे भी उससे वाककला में आ जाने की प्रार्थना करते हैं ताकि देवता द्वारा गांव वालों के दुःख दर्द को दूर किया जा सके और देवता उन कारदारों का सही मार्ग दर्शन करें। गूर के शरीर में विशेष सपन्दन के पश्चात् उसके बाल बिखर जाते हैं वह देवता की बात बताता है। लोग देवता से प्रश्न करते हैं और वह देवता की ओर से उनके प्रश्नों का उत्तर देता है।

लोग इस देवता से हर तरह की कामाएं करते हैं और जब उनकी इच्छाएं पूरी होती हैं तो व्यक्ति विशेष देवता को

अपने घर अतिथि के रूप में आमंत्रित करता है। देवता का सजा-सजाया रथ अपने गूर, कारदार पुजारी आदि कारिन्दों तथा ढोल, नगाड़े, शहनाई, करनाल आदि के वादकों सहित उसके घर में पहुंचता है। वह व्यक्ति देवता का बकरे की बलि देकर स्वागत करता है। बढ़िया स्वादिष्ट भोजन से देवता व उसके कार्यकर्त्ताओं का अभिनन्दन किया जाता है। इस अवसर पर देवता के उपासक जो कुछ पूछते हैं उसका उत्तर उसे देवता के गूर के माध्यम से स्वतः ही मिल जाता है।

इस देवता का भ्रातृ सम्बन्ध देवनगर के देवता से है पर इस सम्बन्ध में बहुत अधिक स्पष्टीकरण नहीं मिल पाया है। कतिपय वृद्ध लोगों के अनुसार देवनगर का देवता ही नलग क्षेत्र में साम्राज्य स्थापित किए है। नलग के देव जीजड़ के सम्बन्ध में एक बात उल्लेखनीय है कि धामी क्षेत्र के कारदार ही यहां आकर स्थानीय कारदारों में शामिल होते हैं और दोनों क्षेत्रों के कारदार आपस में मिलकर देव कार्य सम्पन्न करते हैं। मुख्यतयः "जागरा" और "चेरशी" में दोनों स्थानों में कारदारों की उपस्थिति अनिवार्य है।

हर छठे महीने इस देवता का जागरा किया जाता है। जागरे में देवता को प्रत्येक घर से निश्चित मात्रा में अन्न दिया जाता है और चेरशी में देवता की ओर से समस्त ग्रामवासियों को भोग दिया जाता है। यह हर तीसरे साल होती है। कारदारों के घर कभी किसी किस्म की अशुद्धि हो जाए तो चौथे साल में भी चेरशी करने का विधान है। इस सम्बन्ध में समस्त ग्राम वासियों के कर्त्तव्य व शुद्धि/अशुद्धि का विचार प्रायः वैसा ही है जैसा कि पाहल के दामोदर के सम्बन्ध में वर्णित है, इन दो मुख्य त्यौहारों के अतिरिक्त साल की प्रमुख चार संक्रान्तियों को यह अपने मन्दिर से पालकी में यथा विधि सजे सजाए ढंग से बाहर निकलता है तथा अपने भक्तों को दर्शन देता है और उनकी मनौतियों को पूरा करने की भरसक कोशिश करता है। इस अवसर पर ग्रामीण लोग रंग-बिरंगी वेश-भूषा में देव मन्दिर के प्रांगण में इकट्ठे होते हैं। बच्चे- बूढ़े जवान सभी के दिलों

में उत्साह होता है। कभी-कभी दिन में प्राय चार-पांच बार ग्रामीण लोगों की उमंग व उत्साह से प्रसन्न होकर देवता नाचने भी लग जाता है तथा बजन्तरी उस वक्त एक विशेष प्रकार की धुन छेड़ते हैं।

जैसा कि ऊपर वर्णित है इसका मातृ सम्बन्ध देवनगर स्थित देवता से है और पाहल के दमोदर व न्हेवर के धान्दी देव से इसका मैत्रीपूर्ण व्यवहार है। एक दूसरे के 'कारज' में ये विशेष अतिथि के रूप में निमन्त्रित किये जाते हैं और ये देव अपने-अपने कारदारों के साथ अपने में जवानों की ड्योढी में निमन्त्रित करने पर आते भी हैं। यदि कभी क्षेत्र में कोई गम्भीर समस्या पैदा हो या कोई प्राकृतिक संकट उपस्थित हो तो ये तीनों देव आपस में उसके निवारण के लिए उपायों पर भी विचार विमर्श करते हैं परन्तु इन तीनों देवों का "धारा रे देव" के साथ सम्बन्ध अच्छा नहीं है। ये उसके तीव्र विरोधी हैं। यहां तक कि यदि इन दोनों क्षेत्रों की औरतें कभी जाने अनजाने आपस में कंघी एक दूसरे की इस्तेमाल करें तो उनके सिर के सारे बाल झड़ जाते हैं "धारा रा देव महाराज शकचन्द की स्मृति में माना गया है। यह विरोध मुख्यतय: धारा रा देव में वाममार्गी होने के कारण माना जाता है। यह देव वाममार्गी साधना पर बल देता है जिसमें 'वीर' नारसिंह आदि की पूजा का विधान है जिसका झुकाव औरतों की ओर अधिक होता है। इस तरह की पूजा का प्रचलन कांगड़ा बिलासपुर व अर्की आदि क्षेत्रों में है।

इस देवता के कारदार खानदानी होते हैं, पैतृक परम्परा से इसकी पूजा आदि का विधान है परन्तु यदि किसी प्रकार खानदान में कोई योग्य व्यक्ति न रह जाये अथवा व्यक्ति अशक्त हो जाए और देव कार्य ठीक ढंग से न चले तो देव कार्य के लिए किसी उपयुक्त व्यक्ति की तलाश की जाती है। इस पर भी यही कोशिश रहती है कि देव भण्डारी व देवता का दीवां ये दोनों पद पैतृक ही बने रहें।

इस देवता की शासन पद्धति भी क्षेत्र के अन्य सभी देवताओं की ही भान्ति है। यह लोकतन्त्रात्मक पद्धति में ही विश्वास रखता है। इसकी अध्यक्षता में इसकी प्रजा समस्याओं का समाधान ढूंढती है। यह देव अपने चमत्कार के बल से लोगों की आध्यात्मिक व पारलौकिक विषयों से सम्बन्धित जिज्ञासा शान्त करता है। यहां एक अन्य बात भी देखने को मिलती है कि देव संस्था के अन्तर्गत जाति-निरपेक्ष स्वायत शासन को व्यवहार में लाया जाता है।

●

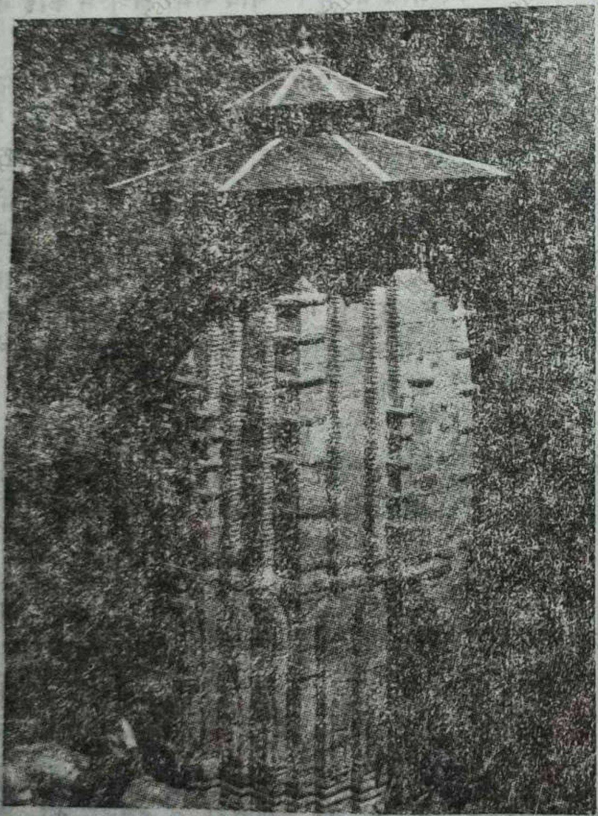

ब्रजेश्वरी मन्दिर चम्बा (शिखर)

सरपारा का जल देवता

आत्मा राम केदारटा

"हमारे धर्म और संस्कृति की जड़ हमारे देवी-देवता हैं, इस बात को लेकर कोई दो मत नहीं हो सकते। सृष्टि की रचना से लेकर ग्राज तक के इतिहास पर यदि नज़र दौड़ाई जाए तो हम पाते हैं कि यह धर्म तथा संस्कृति किसी न किसी अज्ञात परन्तु प्रबल शक्ति की छत्र छाया में ही पनपी है,। जिसने भी इस सर्वोच्च, प्राकृतिक शक्ति का विरोध या अवहेलना की तो उसे सदैव मुंह की खानी पड़ी तथा ग्रन्ततः भगवान् की इस-अपार लीला पर मानव को विश्वास करने पर विवश होना पड़ा।"

उपरोक्त पंक्तियों में कितनी सच्चाई है, यह सिद्ध करने लिए इस लेख में ऐसे ही एक ग्रामीण देवता का वर्णन या पूर्ण विवरण दे रहा हूं, जिसने ग्रपने चमत्कारों से न केवल कुछ ग्रामों के निवासियों को प्रभावित किया बल्कि लाखों लोगों के दिलों में एक गहरी आस्था बनाए रखी है।

देवता जल की उत्पत्ति एवं मान्यता :- देवता "जल" का मूल स्थान इलाका 15/20 तहसील रामपुर बुशैहर के एक गांव "सरपारा" में है। जहां इसके अनेकों मन्दिर हैं। एक देवता के अधीन कुछ गांव होते हैं, जिसे हम स्थानीय भाषा में "देवठी" कहते हैं। देवता जल की देवठी में सरपारा के इलावा, कस्तैन, शिलाबावी, डखरैली, कानधार, खुडना, सुघा, गांव-सिकासेरी, मलोआ, दारपा, टिकरीधार, गेर आदि ग्राम आते हैं। इन ग्रामों की कुल जनसंख्या लगभग 1500 है।

मन्दिर का आकार प्रकार :- देवता जल के मन्दिरों की बनावट में हिमाचल प्रदेश के ग्रामीण देवताओं के मन्दिरों की

बनावट से कोई विशेष भिन्नता नहीं। कुल मिलाकर देवता के छः मन्दिर हैं। एक मन्दिर वहां है, जहां से इसकी उत्पत्ति हुई बताई जाती है। उस स्थान में लगभग 300 मीटर लम्बा तथा 200 मीटर चौड़ा लगभग गोलाई लिए हुए दल-दल का समतल मैदान है। मैदान की पूर्व दिशा की ओर एक छोटा सा लकड़ी तथा पत्थर द्वारा निर्मित मन्दिर है। इस मन्दिर को वहां क्यों बनाया गया इसकी भी एक कथा है, कहते हैं कि सरपारा देवठी के लोगों ने उस दल-दली जमीन में जिसे "सौर" कहते हैं एक मन्दिर बनाने का निश्चय किया, सब लोगों की राय थी कि देवता जल स्वयं कोई न कोई चमत्कार दिखा कर हमें संकेत देंगे कि मन्दिर कहां बनाया जाए। लोग, इक्ट्ठे हुए और सौर की तरफ चल पड़े। साथ में देवता की पालकी भी चली, सौर में पहुंच कर एक स्थान पर देवता ने सिर झुकाना शुरू किया तथा रुक गया, वहां पानी का एक स्रोत है जहां से सदैव पानी निकलता रहता है और ये पानी सौर के बीचों-बीच होता हुआ सरपारा गांव की ओर बहता है। जिस स्थान पर देवता सिर झुका कर संकेत कर रहा था, सारे लोग वहां इक्ट्ठे हुए तथा उत्सुकता से उस ओर देखने लगे जहां पानी का स्रोत था, चन्द ही क्षणों में वहां से एक काला नाग निकला और कीचड़ वाली घास को चीरता हुआ आगे बढ़ा। थोड़ी दूर जाने पर उस दल-दल में एक पत्थर के नीचे घुस कर गायब हो गया। लोगों ने बड़ी-बड़ी लकड़ी से उस पत्थर को हटाया तो देखा कि उस पत्थर के नीचे लगभग $1\frac{1}{2}$ वर्ग फुट व्यास की एक कूईया थी, जहां निर्मल परन्तु नीला रंग लिए गहरा पानी था, नाग वास्तव में उसी स्थान पर लुप्त हो गया था। बस लोगों ने उसी पवित्र स्थान पर देवता जल से अनुमति लेकर इस मन्दिर का निर्माण किया।

दूसरा वह मन्दिर है जहां देवता की पालकी को सदैव एक कमरे में रखा जाता है। साथ में एक बड़ा हॉलनुमा कमरा है जिसे लोग रसोई के लिए काम में लाते हैं। उस कमरे की निचली मन्जिल में बिना फर्श का हॉल है जहां वर्ष में एक

बार दुर्गा पूजा की जाती है तथा पण्डित से दुर्गा पाठ आदि करवाए जाते हैं। यह मन्दिर भी लकड़ी, पत्थर तथा गारे आदि से तैयार किया गया है। तीसरा मन्दिर, देव निवास वाले मन्दिर से लगभग 50 मीटर की दूरी पर बनाया गया है जो वास्तव में देवता "महासू" की कोठी के नाम से जाना जाता है। इस आकार के मन्दिर लगभग पूरे हिमाचल में देखने को मिलते हैं। महासू देवता जिसके नाम पर जिला महासू का नाम रखा गया था, यह तीन मन्जिला लगभग 150 फुट ऊंचा मन्दिर है। इसे खूबसूरत पत्थरों को तराश कर तथा देवदार की मजबूत लकड़ियों को जोड़ कर बनाया गया है। मन्दिर के आधार में कहीं-कहीं तो 8 से 10 फुट लम्बे तथा 1½ फुट चौड़े, मोटे पत्थर तराश कर लगाए गए हैं। मन्दिर में गारा आदि नहीं लगा है। लकड़ी के जोड़ इतनी मज़बूती से लगाए गए हैं, कि आज भी लगभग 500 वर्ष पुराने निर्मित इस मन्दिर को कोई खराबी नहीं पहुंची, जब कभी तेज हवा चलती है या भूकम्प आता है तो पूरा मन्दिर एक लम्बे वृक्ष की भांति हिलता है परन्तु गिरने का नाम नहीं लेता। सबसे ऊपर वाली मन्जिल में देवता महासू की लकड़ी की छोटी सी कोठरी है, जहां विशेष अवसर पर देवता की पूजा होती है। मन्दिर की छत भी लकड़ी की है। ऊपर की मन्जिल के दरवाजे से एक लोहे की मोटी सांकल (चेन) सबसे नीचे वाली मन्जिल के दरवाजे से जुड़ी दीवार के साथ-साथ लटकाई गई है। बीच की दो मन्जिलों के कमरे में देवदार की लकड़ी का फर्श है, दो मन्जिलों के बरामदे पश्चिम तथा उत्तर की ओर बनाए गए हैं। सबसे ऊपर की मन्जिल के दो कोनों में छत से लटकती हुई दो घण्टियां हैं। छत के नीचे चारों ओर कशीदकारी करके एक पगड़ी लगाई गई है। उस में लटकती हुई देवदार लकड़ी के छोटे-छोटे लगभग 6 इन्च लम्बे टुकड़े खराद कर लगाए गए हैं, जो पगडी में एक झालर का काम करते हैं। यह झालर बरामदे के नीचे वाले भाग में भी लगाई गई है। जब कभी हवा चलती है तो यह झालरें तथा घण्टियां एक दूसरे से टकरा कर एक मधुर ध्वनि निकालते हैं, लगता है जैसे प्रकृति स्वयं बिना साज बजाए देवता महासू की

पूजा-अर्चना कर रही हो। सरपारा गांव में यदि कोई अजनबी आ जाए तथा रात्रि के सन्नाटे में जाग रहा हो तो घण्टियों तथा झालरों से उत्पन्न स्वर को सुन कर चौंक पड़ता है। मन्दिर के पूर्वी हिस्से की ओर न तो कोई दरवाजा है न ही बरामदा। नीचे से ऊपर तक दीवार ही है जिसमें लगभग 45 जोड़ लकड़ी के स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं।

चौथा मन्दिर महासू की कोठी के दक्षिण दिशा की ओर लगभग 100 मीटर की दूरी पर बनाया गया है जिसे स्थानीय भाषा में 'देवरा' कहते हैं। यह एक ही कमरा है जिसे दो भागों में विभक्त किया गया है। 3/4 भाग में लकड़ी का फर्श लगा है तथा 1/4 भाग में फर्श नहीं है। इस हालनुमा कमरे की लम्बाई 15 मी० तथा चौ० 12 मीटर है। इस कमरे में कोई सिलिंग नहीं है। कमरे की ऊंचाई लगभग 10 मीटर है। कमरे को इस ढंग से बनाया गया है कि जब कभी भी बाहर मौसम गन्दा हो तो देवता की पालकी को कमरे में ही नचाया या उठाया जा सके। दक्षिण दिशा की दीवार के साथ आधे हिस्से में एक कोठरी सी बनाई गई है। जहां पर पत्थर की एक मूर्ति रखी गई, जो बड़े देवता की मूर्ति बताई जाती है। पूरे कमरे को जहां से 3/4 तथा 1/4 भाग में विभक्त किया गया है वहां दीवार के स्थान पर छत का बोझ थामने के लिए चार मोटे-मोटे खम्बे लगाए गए हैं, लगता है कि 4 फुट व्यास के दयार के पूरे मोटे वृक्षों को थोड़ा सा तराश कर खड़ा किया गया है। इन चारों स्तम्भों का भी अपना एक विशेष महत्त्व है, वह यह कि इन में एक-एक देवता की स्थापना की गई है, जिनके नाम हैं :- देवता चौरू, बड़ा देवता, नया देवता तथा महावीर, 1/4 भाग में जहां फर्श नहीं है वह विशेष तौर पर हरिजनों के लिए बनाया गया है ताकि हरिजन भी किसी विशेष पर्व पर कमरे में बैठ कर देवता जल की गतिविधियां देख सकें। कमरे में 6 फुट ऊंचा तथा 3 फुट चौड़ा दरवाजा बनाया गया है। दरवाजे के एक ओर बड़ा सा चूल्हा बनाया गया है, जो खाना पकाने के तथा आग सेंकने के काम में लाया जाता है। इस "देवरे" की एक विशेषता यह भी

है कि जब कभी इलाके में या देवठी में कोई भूत या नया देवता उत्पात मचाए तो देवता यदि उसे अपने मन्दिर में रखना चाहे तो ऐसा जल देवता की अनुमति से ही किया जा सकता है और अनुमति मिलने पर इसे मन्दिर में स्थापित कर दिया जाता है, लोग उसे भी श्रद्धा के साथ मान्यता प्रदान करते हैं।

पांचवां मन्दिर एक छोटा सा परन्तु बहुत ही महत्त्वपूर्ण, इस मन्दिर की दक्षिण दिशा में बिल्कुल सट कर है जहां देवता की पालकी सदैव रहती है। इस छोटे से मन्दिर को यहां की स्थानीय भाषा में 'ठौड़' के नाम से पुकारा जाता है। यह मन्दिर वास्तव में दुर्गा का वास है। यहां हर साल यज्ञ होता है तथा बलि चढ़ाई जाती है। यह यज्ञ प्रति वर्ष फाल्गुन मास की संक्राति को होता है। इस मन्दिर में अष्टधातु की बनी एक मूर्ति भी है। इस ठौड़ का यह विशेष महत्त्व है कि स्वयं देवता जल भी दुर्गा की अनुमति के बिना कोई कार्य नहीं करता, हर काम के लिए सिर झुकाकर ठौड़ से इजाज़त मांगता है। साथ में जो खाली स्थान है वहां पर देवता जल की पालकी को निकाल कर नचाया जाता है, ताकि अनुमति प्राप्त करने के लिए देवता को दूर न जाना पड़े।

सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष इस दुर्गा मन्दिर का यह है कि, दो व्यक्तियों के बीच उठे विवाद में यदि हमें सच्चाई साबित करनी हो तो दोनों व्यक्तियों को अपनी-अपनी सच्चाई के पक्ष में ठौड़ के सामने मिट्टी उठाकर यह कहना होता है कि "हे जागा माटो ठौड़ अगर मैं झूठा हूं तो तू मुझे जड़ से ही नष्ट कर देना। जो व्यक्ति सच्चाई पर हो वह बेधड़क होकर मिट्टी उठाता है झूठा व्यक्ति ऐसा करने से पहले ही कतरा जाता है। इससे फैसला करने वाले लोग दोनों पक्षों को मनोवैज्ञानिक ढंग से भांपते है। अक्सर यह भी देखा गया है कि झूठे व्यक्ति ने यदि मिट्टी उठाई तो उसका शीघ्र ही अनिष्ट हो जाता है। अत: समस्त लोगों में यह धारणा बन चुकी है कि कोई भी व्यक्ति किसी भी समय दूसरे पक्ष को घसीट कर मन्दिर के सामने

देवता जल की अनुपस्थिति में भी मिट्टी उठाने ले जाता है। यह एक मात्र ऐसा मन्दिर है जिसकी छत स्लेटों से तैयार की गई है। इसका अन्य भाग लकड़ी, पत्थर तथा गारे से बनाया गया है। इस मन्दिर की सारी ऊंचाई 5 फुट की है। कमरे के अन्दर बिल्कुल झुक कर जाना पड़ता है।

छटा तथा अन्तिम मन्दिर सरपारा ग्राम से लगभग चार कि० मी० की दूरी पर ग्राम 'धारला' में है। यह मन्दिर भी एक छोटा सा मन्दिर है जो लकड़ी, पत्थर तथा गारे से निर्मित किया गया है। यह ग्राम धारला के बीच में स्थित है। कुछ लोगों का कहना है कि देवता जल का सबसे पुराना तथा असली (मूल) मन्दिर यही है परन्तु मेरे विचार में इस मन्दिर को धारला में इसलिए बनाया गया कि जब कभी किसी विशेष कारण से देवता जल की पालकी धारला ले जाते हैं तो देवता की पालकी को किसी निजी मकान में रखने के वजाय किसी अलग स्थान पर रखने के उद्देश्य से इस मन्दिर का निर्माण किया गया है। वर्ष में एक बार देवता जल इस मन्दिर में भी अवश्य ठहरते हैं।

देवता जल का स्वरूप :- हिमाचल प्रदेश में देवी-देवताओं के दो रूप ही देखने को मिलते हैं। एक रथ रूप तथा दूसरा मूर्ति रूप। देवता जल रथ रूप में है। देवता जल के रथ का निर्माण एक विशेष लकड़ी जिसे यहां की स्थानीय भाषा में 'घा' कहते हैं द्वारा किया गया है। यह लकड़ी अल्प मात्रा में खड्ड के किनारे आठ हजार फुट से दस हजार फुट की ऊंचाई पर उपलब्ध होती है। इस लकड़ी को लाने के लिए देवता स्वयं व्यक्ति को चुनता है और दिन निश्चित करता है। जब इस वृक्ष को काट कर लकड़ी के Logs बनाए जाते हैं तथा मन्दिर तक लाया जाता है तो कार्य कर रहे व्यक्ति को व्रत रखने पड़ते हैं। यहां तक कि रथ को बनाने वाला मिस्त्री भी एक समय (शाम को ही) खाना खाता है।

रथ की लम्बाई लगभग $2\frac{1}{2}$ फुट चौ० 2 फुट के लगभग होती है परन्तु ऊंचाई $6\frac{1}{2}$ फुट होती है। पहले गोलाकार चौपाए

तैयार किए जाते हैं जिसे खराद कर कहीं से मोटा कहीं से तंग किया जाता है, फिर उनमें तीन तख्तियां सी एक ओर तथा इसी प्रकार चारों ओर लगाई जाती हैं, बीच वाले जोड़ की फट्टियां सिर्फ आगे तथा पीछे कुछ चौड़ी लगभग 8 इन्च लगाई जाती हैं जिनमें आगे-पीछे दो दो छेद लगभग $2\frac{1}{2}$x3 इन्च के किए जाते हैं जो 'जमाणी' लगाने का स्थान होता है। यह आयताकार ढांचा लगभग $4\frac{1}{2}$ से 5 फुट तक ऊंचा होता है। चौपायों के निचले हिस्से को पित्तल से मढ़ा जाता है ताकि रथ को उठाते, नचाते बिठाते टूट फूट न हो या घिस न जाए। ऊपर के हिस्से में चारगोड्ड़ओं में $1\frac{1}{2}$x2 इन्च तक के छेद रखे जाते हैं। एक लगभग 3x3 इन्च की 6 फुट लम्बी लकड़ी रथ के बीचों बीच गाड़ दी जाती है जो रीढ़ की हड्डी का काम करती है। $4\frac{1}{2}$ इन्च ऊंचे आयताकर ढांचे से चार इन्च मोटी तथा $1\frac{1}{2}$ फुट लम्बी गोल चार लकड़ियों को 6 फुट लम्बी मध्य वाली लकड़ी के सिरे लगभग 6 इन्च नीचे चारों रुलनुमा लकड़ियों को रस्सी से बांध लिया जाता है। इस प्रकार रथ ऊपर से नुकीला तथा नीचे से चारकोनों वाला ढांचा बन जाता है। ढांचा बनने के पश्चात् ऊपर वाले नुकीले स्थान से लगभग 1/4 भाग तक सेलियों की रस्सी से चारपाई की नवार की तरह मोटे-रूप में मढ़ा जाता है। वह इसलिए क्योंकि यह स्थान मोरे लगाने के काम में लाया जाता है। रस्सी बुनने के पश्चात् रथ के चारों ओर एक विशेष प्रकार का कपड़ा जिसे 'मोसरु' कहते हैं। चारों तरफ इस ढंग से लगाया जाता है कि रथ की लकड़ी कम से कम दृष्टिगत हो। मोसरु लगाने के पश्चात् रथ के ऊपर वाले 1/4 भाग में मोहरे लगाए जाते हैं।

रथ में लगाई गई मूर्तियां :- देवता जल के रथ में कुल 6 मोहरे लगे हैं। रथ के सबसे ऊपर वाले हिस्से में जो रथ का नुकीला हिस्सा है, देवता जल का मोहरा लगाया गया है। जिसकी ल., चौ., ऊ. क्रमश: 8x10 इंच है। इसे अष्टधातु द्वारा बनाया गया कहा जाता है परन्तु पित्तल की मात्रा उसमें अधिक है। जहां तक कारीगरी या शिल्पकारी का प्रश्न है, मोहरे का निर्माण किसी सुप्रसिद्ध कारीगर का कमाल है। मोहरे में हंसी

या मुस्कान के भाव, नाक-नकश इस ढंग से दर्शाए गए हैं ऐसा लगता है कि अभी मूर्ति बोल उठेगी। दूसरा मोहरा जो मुख्य मोहरे के नीचे लगा है, नाग का मोहरा है जो देवता जल का अन्तिम तथा नवां पुत्र है। इसका निर्माण लगता है प्रथम मोहरे के काफी बाद किया गया है। इसके निर्माण में उतनी सतर्कता से काम नहीं लिया गया, साथ ही यह खालिस पित्तल का लगता है क्योंकि कभी कभार यह काला सा पड़ जाता है। एक विशेष बात जो इस मोहरे में दर्शाई गई है वह है बांए कान के साथ चेहरे पर जल जाने के जख्म का चिह्न, तीसरा मोहरा जो बीच में है सबसे छोटा है। यह देवी का मोहरा है। इसका नाम क्या है, कोई पता नहीं। यह भी अष्टधातु द्वारा निर्मित लगता है। इतना अवश्य है कि मोहरे से स्पष्ट नारी रूप झलकता है। चौथे तथा पांचवे मोहरे का निर्माण चांदी द्वारा किया गया है। जो 6x8 इन्च लम्बे, चौड़े है। यह मोहरे केवल शान के लिए ही लगाए गए हैं। ऊपर वाले तीन मोहरे बाकायदा रथ को नचा सकते हैं। इनका अस्तित्व है ये माली पर खेलते भी हैं। एक छटा मोहरा रथ के बांई ओर चांदी का लगाया गया है, जिसे 'गरशाई देवता' का मोहरा कहते हैं। इस का भी अपना यश है, अस्तित्व है। इसके इलावा एक चांदी का मोहरा जिसके माथे पर सोने का टिका लगा है, 12 तथा 13 श्रावण को मेले के शुभ अवसर पर प्रति वर्ष बीच में लगाया जाता है। मेले के दौरान सिरे में चांद रूपी चांदी का मुकुट भी लगाया जाता है। जब देवता के रथ को बिठाया जाता है तो चांदी का एक छत्र जिसका व्यास 6 इंच का होगा लगाया जाता है।

मोहरों के इलावा सिर पर याक नामक जानवर के पूंछ के बालों को लगाया जाता है। इन सारे बालों का वज़न लगभग 2 कि. ग्रा. तक होता है। जब रथ नचाया जाता है तो बाल उछल-उछल कर हिलते हैं। रथ के मध्य भाग में जहां आगे-पीछे वाले हिस्से में छेद रखे होते हैं रथ को उठाने के लिए दो लगभग 20 फुट लम्बी तथा 3 इंच मोटी लकड़ी का प्रयोग किया जाता है, जिन्हें जमाणी कहते हैं। 'ज़माणियां लम्बी होने

के कारण रथ के बीच आर-पार गुज़ार ली जाती हैं, यह लकड़ी भी विशेष प्रकार की लकड़ी 'खिड़की' तथा दरल, जो निहायत कठोर तथा लचकीली होती है द्वारा बनाई जाती है। रथ को चार व्यक्तियों द्वारा उठाया जाता है। दो व्यक्ति ज़माणी में तथा दो व्यक्ति रथ के दो सिरों पर लगते हैं। इस प्रकार रथ की सजावट बड़ी निपुणता से की जाती है ताकि रथ का स्वरूप सुन्दर लगे। कुल मिला कर रथ का वज़न लगभग 30 से 35 किलो बन जाता है।

देवता की पूजन पद्धति :- देवता-जल की पूजन पद्धति को दो कालों में विभक्त किया जाना उचित होगा, क्योंकि समय के साथ-साथ पूजन पद्धति में भी परिवर्तन आता रहा है। आरम्भ में जब देवता जल की व्युत्पत्ति हुई, उस समय कहा जाता है कि सरपारा से लगभग 150 कि. मी. दूर जिला कुल्लू के ग्राम जांव से एक पण्डित परिवार का सदस्य पैदल चल कर प्रतिदिन प्रात: देवता की पूजा करने सरपारा पहुंचता था, वह भी निकटतम मार्ग श्री खण्ड के साथ की घाटी जिसकी ऊंचाई लगभग 15,000 फुट है से आया करता था उसी रास्ते में 14,000 फुट की ऊंचाई पर पानी का स्रोत है जिसका नाम उसी पण्डित के नाम पर 'बाटौ पाणी' पड़ा है। कहते हैं कि वह पण्डित प्रात: वहां से स्नान करके आता था, कुछ लोगों का मत है कि पण्डित को देवता जल ने इतनी शक्ति दे रखी थी कि वह गरुड़ को अपना वाहन बना कर सरपारा पहुंचता था, खैर जो भी हो पण्डित सरपारा आकर रथ में लगे मोहरों की विधिवत् पूजा करता था।

यदि आधुनिक पूजा पद्धति पर दृष्टी डाली जाए तो आज देवता स्वयं एक-एक साल के लिए अपने क्षेत्र के किन्हीं दो व्यक्तियों को पुजारी नियुक्त करता है। यह पुजारी एक ही खानदान से न होकर दो खानदान से रखे जाते हैं ताकि किसी एक पुजारी के घर, सुतक-पातक होने पर दूसरा देवता की पूजाकर सके। पुजारी प्रात: 10 बजे से पूर्व देवता की पूजा करने भूखे पेट हर तरह के मौसम में मन्दिर आता है, मन्दिर से एक विशेष प्रकार का बर्तन जिसे 'जारी' कहते हैं लेकर पानी के

स्रोत की ओर स्नान करने चल पड़ता है। स्नान करने के पश्चात् बिना-जूते पहने भले ही 5 फुट बर्फ हो धोती पहन कर तथा मूर्ति स्नान के लिए विशेष बर्तन में पानी लाता है मार्ग में किसी से बात नहीं करता, किसी व्यक्ति की छाया से भी बचता हुआ मार्ग में थोड़ा-थोड़ा जल छिड़कता हुआ मन्दिर में प्रवेश करता है। उसके पश्चात् रथ के सामने खड़े होकर जल के छींटे मोहरों पर छिड़का कर उन्हें लाल रंग के तौलिया-नुमा साफ वस्त्र से साफ करता है। उसके बाद जड़ी धूप को एक विशेष प्रकार से बनाए गए धातु के धनैरे, 'दुड़छ' में जलाया जाता है। सारा वातावरण प्राकृतिक सुगन्धित धूप से महक उठता है। एक विशेष बर्तन में चंदन, कूंगू, चावल का टीका तैयार करके, हाथ में घण्टी लेकर सर्वप्रथम ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर धूप की पूजा होती है। घण्टी की आवाज सुन कर समस्त ग्राम वासी देवता का नाम श्रद्धा से लेते हैं। टीका मोहरों को लगाया जाता है, फूल चढ़ाए जाते हैं, देवता की पूजा में एक विशेष पौधा जिसे "कुबश" कहते हैं तथा हर मौसम में मिलता है, चढ़ाया जाता है। यह फूल नहीं बल्कि हरा सुगन्धित पौधा है। मन्दिर के बाहर साजवादक ढोल, नगाड़े, भाणा, गंसा, रणसिंगा, शंख आदि से विशेष राग बजाया जाता है। यह क्रिया लगभग 15 से 20 मिन्ट में हो जाती है तत्पश्चात् पुजारी मन्दिर से बाहर आकर धोती खोल कर तथा बिना जूते के ही पाजामा आदि वस्त्र पहन कर घर पहुंच जाता है। घर पहुंच कर स्वयं अपने हाथ से परिवार से अलग ही रसोई में अपने लिए खाना तैयार करता है। सच पूछिए तो देवता के समस्त कारकूनों में से सबसे कठिन कार्य पुजारी का है।

●

अकादमी की साहित्यिक तथा सांस्कृतिक एवं अन्य गतिविधियां

फरवरी, 1991 से अप्रैल 1991 तक

16 **फरवरी,** 1991 :- अकादमी द्वारा जिला कांगड़ा के धर्मशाला में जिला परिषद् हाल में इस जिले के भाषायी एवं सांस्कृतिक सर्वेक्षकों के सेमीनार का आयोजन किया गया। इस प्रकार की संगोष्ठियों का आयोजन करके सर्वेक्षकों के कार्य में आने वाली कठिनाईयों का निराकरण करके उन्हें कार्य हेतु मार्ग दर्शन दिया जाता है।

16 **फरवरी से** 25 **फरवरी,** 1991:- राष्ट्रीय एकता सप्ताह के अवसर पर अकादमी द्वारा राजकीय महाविद्यालय बिलासपुर के सहयोग से दस दिनों तक पुस्तक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया जिसका उद्घाटन महामहिम राज्यपाल श्री वीरेन्द्र वर्मा ने किया। इस प्रदर्शनी में रुपये 630/- मात्र के अकादमी प्रकाशनों/पत्रिकाओं का विक्रय किया गया। समापन समारोह की अध्यक्षता माननीय मुख्यमन्त्री श्री शान्ता कुमार ने की।

फरवरी 1991 में अकादमी द्वारा स्वैच्छिक संस्थाओं को रुपये 12375/- सांस्कृतिक आयोजनों के लिए अनुदान के रूप में दिए गए।

7 **मार्च** 1991 को गेयटी थियेटर शिमला में प्रसिद्ध विद्वान एवं दार्शनिक स्व० हरिचन्द पराशर की जयन्ती मनाई गई। इस अवसर पर लेखक गोष्ठी और कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया। लेखक गोष्ठी में श्री जगदीश शर्मा ने "हरिचन्द पराशर का व्यक्तित्व तथा कृतित्व" विषय पर पत्र पढ़ा। अन्य उपस्थित विद्वानों ने श्री पराशर को अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए उन

के व्यक्तित्व, कृतित्व एवं साहित्यिक योगदान बारे संस्मरण सुनाए, उसी सायं बहुभाषी कवि सम्मेलन का आयोजन भी किया गया।

17 **मार्च से** 19 **मार्च** 1991 :- सांस्कृतिक प्रलेखन योजना के अन्तर्गत शिमला जिले की रोहड़ू तहसील के गांव 'खाबल' में अकादमी प्रलेखन दल द्वारा 'शान्त' यज्ञ की वीडियो फिल्म तैयार की गई।

17 **मार्च से** 23 **मार्च** 1991 :- राज्य स्तरीय नलवाड़ी मेले के अवसर पर अकादमी द्वारा बिलासपुर में एक पुस्तक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया जिसका उद्घाटन उपाध्यक्ष हिमाचल प्रदेश विधानसभा श्री रिखी राम कौंडल ने किया। इस पुस्तक प्रदर्शनी के दौरान रुपये 500/- के अकादमी प्रकाशन और पत्रिकाओं का विक्रय भी किया गया।

27 **मार्च,** 1991 :- श्री राधारमण शास्त्री माननीय शिक्षा एवं भाषा-संस्कृति मन्त्री और वरिष्ठ उपाध्यक्ष अकादमी एवं सभापति कार्यकारी परिषद् की अध्यक्षता में अकादमी कार्यकारी परिषद् की बैठक का आयोजन उनके सचिवालय कक्ष में हुआ। इस बैठक में आयुक्त एवं सचिव भाषा-संस्कृति, सचिव, (वित्त) के प्रतिनिधि, निदेशक, भाषा एवं संस्कृति, सदस्य सर्वश्री डॉ० पी. सी. कश्यप, विद्यानन्द सरैक एवं पदेन सदस्य सचिव अकादमी डॉ० बंशी राम शर्मा ने भाग लिया। इस बैठक में अकादमी से सम्बन्धित अनेक विचाराधीन विषयों पर निर्णय लिए गए।

2 **अप्रैल,** 1991 :- स्व० श्री लाल चन्द प्रार्थी जयन्ती का आयोजन किया गया। इस बार यह समारोह घुमारवीं जिला बिलासपुर में आयोजित हुआ। दो सत्रों में सम्पन्न इस कार्यक्रम के पहले सत्र में लेखक गोष्ठी तथा दूसरे सत्र में सायं कवि सम्मेलन हुआ। सांस्कृतिक कार्यक्रम में प्रसिद्ध लोक गायिका गम्भरी देवी व उनके दल ने लोकगीत/लोकनृत्य प्रस्तुत किए।

अकादमी की गुरु शिष्य परम्परा योजना के अन्तर्गत दो शिष्यों श्री प्रवीण कुमार को गुरु श्री एल. के. पण्डित से गायन में तथा श्री दीपक कुमार को गुरु उस्ताद अमजद अली खां से सरोदवादन में प्रशिक्षण प्राप्त करने लिए दो-दो वर्ष की अवधि

के लिए रुपये 500/- प्रति मास की दर से छात्रवृत्ति देने की स्वीकृति प्रदान की गई।

साधनहीन कलाकारों/साहित्यकारों को पैन्शन योजना के अन्तर्गत विभिन्न विधाओं के 8 कलाकारों/साहित्यकारों को पैन्शन देने का निर्णय लिया गया। इनमें तीन कलाकारों तथा एक साहित्यकार को आजीवन तथा दो कलाकारों को दो वर्ष के लिए, एक कलाकार को एक वर्ष के लिए तथा एक साहित्यकार की विधवा को तीन वर्ष के लिए पैन्शन स्वीकृत की गई।

पहाड़ी चित्रकला में चार गुरुओं सर्वश्री ओम सुजानपुरी, ओ. पी. टाक, चन्दुलाल रैणा तथा विजय चम्बयाल के पास प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे कुल आठ शिष्यों को जुलाई 1990 से दो वर्ष की अवधि के लिए रुपये 500/- प्रतिमाह की दर से शिष्य छात्रवृत्ति प्रदान करने का निणय लिया गया।

19 अप्रैल से 28 अप्रैल, 1991 :- अकादमी द्वारा तहसील चढ़गांव जिला शिमला के गांव गुम्मा में दस दिवसीय भटाक्षरी प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन किया गया। भटाक्षरी ब्राह्मणों द्वारा प्राचीनकाल से तान्त्रिक पूजा तथा ज्योतिष के लिए प्रयोग में लाई जाती है। इस कार्यशाला के आयोजन से इस प्राचीन लिपि को सीखने तथा पढ़ने की दिशा में रूचि उत्पन्न करना है। हिमाचल में इस लिपि का प्रयोग सिरमौर तथा शिमला जिले के ब्राह्मण करते हैं।

अकादमी पुस्तकालय में :- फरवरी से अप्रैल, 1991 तक तीन महीनों में अकादमी पुस्तकालय में विभिन्न विधाओं की 169 नई पुस्तकें सम्मिलित की गई, हिमशिक्षा की 16 प्रतियां शिक्षा निदेशालय हि० प्र० द्वारा अकादमी पुस्तकालय के लिए मानार्थ दी गई।

फरवरी, 1991 से अप्रैल, 1991 तक तीन महीनों में 110 विद्वानों/शोधकर्त्ताओं ने अकादमी पुस्तकालय में आकर अध्ययन किया जिनमें अधिकांश प्रदेश से बाहर के थे।

●

पुस्तक समीक्षा

पठनीय एवं संग्रहणीय पुस्तकें

साहित्य का सम्बन्ध मानव समाज के परिवेश तथा चिन्तन परिष्कार से है। मनुष्य चाहे बुद्धि का कितना भी विकास कर ले उसे दूसरों के अनुभवों से लाभ उठाने की निरन्तर आवश्यकता रहती है। साहित्य के स्थायीकरण के लिए लिपि की आवश्यकता है तथा लिपिबद्ध करने लिए विचारों, शब्द भण्डार तथा वाणी व लेखनी की आवश्यकता रहती है। विश्व में प्रचलित भाषाओं के शब्द भण्डार के सही उपयोग अर्थ-निर्धारण तथा वाक्य प्रयोग हेतु उपयोग में लाने के लिए शब्दकोषों का असीम महत्व है। शब्दकोष प्रणयन वैज्ञानिक विषय है। अतः इसके लिए पाण्डित्यपूर्ण वैज्ञानिक दृष्टिकोण की आवश्यकता रहती है।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय अपनी अन्य योजनाओं के साथ ही कोष निर्माण का भी महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। निदेशालय द्वारा वर्ष 1990 में जर्मन हिन्दी कोश (खण्ड I A-F) तैयार करके पाठकों के लिए उपलब्ध करवाया गया है। इस विशाल ग्रन्थ का मूल्य मात्र 295.50 पैसे है तथा इसमें 45000 प्रविष्टियां हैं। जर्मन जनवादी गणराज्य के साथ वर्ष 1971-73 में सांस्कृतिक विनियम कार्यक्रम की मद संख्या 22 के अनुसार हुए सांस्कृतिक समझौते के अन्तर्गत इस ग्रन्थ का प्रणयन एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। अपने निदेशकीय वक्तव्य में डॉ० गंगा प्रसाद विमल ने ठीक ही लिखा है कि, "जो लोग हिन्दी में सन्दर्भ ग्रन्थों एवम् कोशों की वर्तमान प्रक्रिया से अवगत हैं वे निश्चय ही इस बात का अनुभव करेंगे कि सामान्यतः

हिन्दी और विदेशी भाषाओं के तथा विशेषत: हिन्दी और जर्मन के वृहत् किन्तु सन्तुलित उभयभाषी कोशों का बड़ा अभाव है। यह कोश अपने वृहत् किन्तु नियन्त्रित आकार तथा सरल एवं सुबोध निर्माण पद्धति के कारण ऐसे अभाव की पूर्ति कर सकेगा, इस बात का हमें पूरा विश्वास है।" ग्रन्थ के आरम्भ में ही 'प्रस्तुत जर्मन-हिन्दी कोश कैसे देखें?' शीर्षक के अन्तर्गत उपयोगी निर्देश दिए गए हैं ताकि कोश देखने वाले पाठकों को किसी प्रकार की कठिनाई न हो। जर्मन वर्णों के हिन्दी नाम देकर प्रणेताओं ने दोनों देशों के पाठकों तथा शोधकर्ताओं को उपयोगी सकेत उपलब्ध करवाए हैं। कोश 812 पृष्ठों का विशाल ग्रन्थ है।

निदेशालय की एक अन्य उपलब्धि हिन्दी-तमिल-अंग्रेजी त्रिभाषा कोश का प्रणयन है। इसकी तीन जिल्दें हैं। प्रथम जिल्द में अ से ध द्वितीय में न से ल तथा तृतीय में व से ह तक के वर्णों से सम्बन्धित शब्दों को निम्न क्रम से प्रस्तुत किया गया है—

हिन्दी शब्द	व्या. को०	हिन्दी अर्थ	तमिल पर्याय	देवनागरी लिप्यन्तरण	अंग्रेजी पर्याय

इस प्रकार यह ग्रन्थ हिन्दी, तमिल तथा अंग्रेजी का अनूठा शब्द-कोश बन गया है। अंग्रेजी जानने वाले हिन्दी व तमिल सीखने वाले के लिए इसका उपयोग कर सकते हैं और हिन्दी जानने वाले तमिल व अंग्रेजी तथा तमिल जानने वाले हिन्दी व अंग्रेज़ी सीखने के लिए इससे लाभ उठा सकते हैं। तीनों जिल्दों का मूल्य553 रु० है जो लगभग 2300 पृष्ठों की मूल्य-वान सामग्री के लिए अधिक प्रतीत नहीं होता। शब्दकोष के रूपबंध (फार्मेट) वर्तनीक्रम तथा शब्दों की चुनाव प्रक्रिया के सम्बन्ध में निदेशकीय वक्तव्य में कोश के प्रथम खण्ड में उपयोगी टिप्पणी दी गई है। यह प्रयास राष्ट्रीय एकता तथा दो महान् भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण तथा सामयिक है।

हिन्दी-उर्दू व्यावहारिक लघु कोश द्विभाषा कोशमाला के अन्तर्गत तृतीय पुष्प है। कोश का मूल्य रु० 105 है तथा इसमें कुल 385 पृष्ठ हैं। कोश के आरम्भ में शब्दों के चुनाव, शब्दों का रूप और वर्तनी, पर्यायवाची शब्द तथा विविध मान-दण्डों के सम्बन्ध में निदेशकीय टिप्पणी दी गई है जिससे कोश के प्रयोग सम्बन्ध में मार्गदर्शन हो जाता है। कोश में प्रत्येक पृष्ठ में शब्द-क्रम इस प्रकार रखा गया है।—

हिन्दी शब्द	व्या. को.	उर्दू लिप्यन्तरण	उर्दू पर्याय	नागरी लिप्यन्तरण

इस क्रम में हिन्दी के शब्दों का अर्थ ही उर्दू लिपि में उपलब्ध नहीं होता बल्कि उनकी वर्तनी के सम्बन्ध में जानकारी उपलब्ध हो जाती है। इस प्रकार उर्दू लिप्यन्तरण तथा उर्दू पर्याय से हिन्दी तथा उर्दू भाषाओं में से एक भाषा जानने वाले पाठकों को भी दूसरी भाषा सीखने का अवसर उपलब्ध होगा। यह कोश उर्दू प्रेमियों के लिए भी उतना ही आवश्यक तथा उपयोगी है, जितना कि हिन्दी जानने वालों के लिए। योजना के अनुसार कोश का प्रणयन सामयिक तथा व्यावहारिक आधार परक है।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ऊपर वर्णित तीनों शब्दकोशों के प्रणयन लिए निश्चय ही बधाई का पात्र है। ये कृतियां पठनीय ही नहीं बल्कि संग्रहणीय भी हैं। इन्हें केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय (शिक्षा तथा संस्कृति मन्त्रालय) पश्चिम खण्ड-7, रामकृष्ण पुरम्, नई दिल्ली-110066 से प्राप्त किया जा सकता है।

गत दिनों डॉ० शिवानन्द नौटियाल द्वारा लिखित तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित एक विशाल ग्रन्थ 'गढ़वाल के लोकनृत्य-गीत' को पढ़ने का अवसर मिला। डॉ० शिवानन्द नौटियाल उत्तर प्रदेश सरकार में पर्वतीय विकास तथा उच्च शिक्षा मन्त्री रहे हैं और उन्होंने अनेक वर्षों तक

कर्ण प्रयाग विधानसभा क्षेत्र का विधायक के रूप में प्रतिनिधित्व किया। राजनैतिक जीवन की व्यस्तताओं में अलग उनका साहित्यकार का व्यक्तित्व सुपरिचित है परन्तु लोक संस्कृति के साधक के रूप में गढ़वाल के लोकनृत्य-गीतों पर एक विशाल ग्रन्थ की रचना करके यह सिद्ध कर दिया है कि शोधकर्ता विद्वानों को इतर क्षेत्रों में जीवन की व्यस्तताएं अपने मूल उद्देश्यों से विचलित नहीं कर सकती। पुस्तक विशेष ग्रन्थाकार अर्थात् 20'x30'/4' में मनोहारी चित्रों तथा प्रत्येक अध्याय आरम्भ में भिन्न रंग के कागज़ के साथ सुन्दर योजना विन्यास के अन्तर्गत लगभग 480 पृष्ठों में प्रकाशित की गई है। चित्रावली के अन्तर्गत अन्त में दिए गए दुर्लभ चित्रों से इसका आकर्षण तथा उपादेयता कई गुणा बढ़ गए हैं। डॉ० नौटियाल मूलत: अनुसन्धित्सु विद्वान हैं। वे लोक साहित्य के अनन्य साधक हैं। गढवाल क्षेत्र के लोक नृत्यों तथा लोक गीतों पर संकलित सामग्री से उनके अथक परिश्रम की झलक पाठक को पृष्ठ दर पृष्ठ उपलब्ध होती है। लोक साहित्य के आकर्षक रंगों की भांति ही पुस्तक की सामग्री उल्लासोन्मुखी तथा जीवन्तता के प्रमाणों से पुष्ट है। सम्पूर्ण ग्रन्थ को सात अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय में भौगोलिक. ऐतिहासिक परिचय के अतिरिक्त लोक नृत्यों तथा नृत्यात्मक गीतों का परिचय, द्वितीय अध्याय में देवभावना के नृत्य गीत, पंडौं (पाण्डव) नृत्य गीत, अतृप्त आत्माओं के नृत्यगीत तथा रणभूत नृत्य सोदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। तृतीय अध्याय सामुदायिक एवं सामूहिक सामाजिक नृत्यगीत, जिनमें सामुदायिक एवं सामाजिक नृत्यगीत, सामूहिक नृत्य गीत आदि प्रस्तुत किए गए हैं। चतुर्थ अध्याय में व्यावसायिक जातियों के लोक नृत्यगीत प्रस्तुत किए गए हैं। पचम अध्याय संगीत शास्त्रीय एवं काव्य शास्त्री अध्ययन के लिए समर्पित है। षष्टम अध्याय में उपसंहार व निष्कर्ष तथा सप्तम अध्याय में परिशिष्ट दिए गए हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ का मूल्य मात्र रु० 150/- रखा गया है जो इस आकार के ग्रन्थ तथा दुर्लभ सामग्री के लिए नगण्य है।

पुस्तक को आकर्षक बनाने के उद्देश्य से प्रत्येक पृष्ठ के निम्न भाग पर सुन्दर मोटिफ आकृतियां तथा ऊपरिभाग पर लाल रंग में बेलदार लाइन दी गई है। प्रस्तुतिकरण अत्यन्त कलात्मक ढंग से किया गया है। इससे ग्रन्थ हिमालयी संस्कृति की मूल्यवान कृति बन गया है। गढ़वाल के सम्बन्ध में अब तक लिखे गए दस्तावेजों में यह वृत्ति निश्चय ही सर्वोत्तम कही जा सकती है। सुयोग्य लेखक इसके लिए बधाई के पात्र हैं। पर्वतीय संस्कृति के अध्यताओं के लिए प्रस्तुत ग्रन्थ आवश्यक रूप से पठनीय व संग्रहणीय है।

डॉ० शिवानन्द नौटियाल द्वारा रचित अन्य ग्रन्थ जिन्हें सुलभ प्रकाशन लखनऊ द्वारा प्रकाशित किया गया है, भी उल्लेखनीय हैं। इनमें गढ़वाल दर्शन, कुमाऊं दर्शन, उत्तराखण्ड की जनजातियां, केदार-बदरी यात्रा-दर्शन, हिमाचल दर्शन तपोभूमि, गढ़वाल तथा गढ़वाल के लोक गीत एवम् लोक नृत्य आदि पुस्तकें सम्मिलित हैं। इनमें से गढ़वाल दर्शन, हिमाचल दर्शन, तपोभूमि गढ़वाल तथा गढ़वाल के लोक गीत एवं लोक नृत्य का मूल्य पचास रुपये मात्र प्रति पुस्तक है तथा कुमाऊं दर्शन का मूल्य रु० 45/-, 'उत्तराखण्ड की जनजातियां' मात्र 45/- और केदार बदरी यात्रा-दर्शन का मूल्य मात्र बीस रुपये रखा गया है। सभी पुस्तकें प्रवासी पाठकों तथा सैलानियों और शोध छात्रों तथा परीक्षाओं में बैठने वाले पाठकों के लिए उपयोगी तथा ज्ञानवर्द्धक हैं। डॉ० नौटियाल की प्रतिभा बहुमुखी है। पर्वती क्षेत्रों, विशेष रूप से उत्तरांचल तथा पश्चिमी हिमालय के भूभाग की ओर उनका ध्यान आकृष्ट हुआ है। यह क्षेत्र बैकुण्ठ अर्थात् स्वर्ग है। उत्तराखण्ड तथा हिमाचल के सन्दर्भ हमारे पौराणिक साहित्य में उपलब्ध होते हैं परन्तु इन दुर्गम क्षेत्रों का अवगाहन व सही जानकारी मात्र पर्वतपुत्र ही दे सकते हैं। इन पुस्तकों के विज्ञ लेखक ने पाठकों की जिज्ञासा को सरल शब्दों तथा सामान्य पाठक की पहुंच के भीतर के मूल्य में उपलब्ध पुस्तकों के माध्यम से शान्त करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। वे इस योगदान व प्रयत्न के लिए हार्दिक बधाई के पात्र हैं। यह सुलभ

साहित्य अपने नाम को अक्षरशः सार्थक करते हुए सुलभ प्रकाशन, 17, अशोक मार्ग लखनऊ से प्राप्त किया जा सकता है।

हिमाचल प्रदेश के सम्बन्ध में अकादमी द्वारा निम्नलिखित प्रकाशन गत वर्षों में तैयार किये गए हैं—

1. साहित्यकार-कलाकार विवरणिका
2. पहाड़ी-हिन्दी शब्दकोश
3. कथा सरवरी-3
4. Descriptive bibliography of Himachal
5. A Dictionary of Pahari dialects
6. A Distionary and Grammer of Kanawari
7. दर्द कोहसारों का
8. हि०प्र० लोक जीवन और परम्पराएं

इनके अतिरिक्त इस वर्ष की अवधि में भारतीय भाषा संस्थान मैसूर से प्राप्त वित्तीय अनुदान योजना के अन्तर्गत भाषा विज्ञान, लोक संस्कृति तथा साहित्य से सम्बद्ध शोध प्रबन्धों के प्रकाशन की योजना भी आरम्भ की गई है। प्रकाशनों तथा योजनाओं की पूर्ण जानकारी अकादमी कार्यालय से प्राप्त की जा सकती है।

— बंशी राम शर्मा

●

फार्म-4
(नियम 8 देखिए)

1. प्रकाशन स्थान — शिमला (हिमाचल प्रदेश)
2. प्रकाशन अवधि — त्रैमासिक
3. मुद्रक का नाम व पता — भारतेन्दु प्रिंटिंग प्रैस, शिमला, हि. प्र.
4. क्या भारत का नागरिक है — हां
5. प्रकाशक का नाम — डॉ० बंशीराम शर्मा
6. क्या भारत का नागरिक है — हां
7. पता — सचिव, हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी, शिमला, हि. प्र.
8. सम्पादक का नाम — डॉ० बंशीराम शर्मा
9. क्या भारत का नागरिक है — हां
10. पता — सचिव, हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी, शिमला-171 001

मैं (डॉ०) बंशीराम शर्मा, एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

डॉ. बंशीराम शर्मा
सचिव अकादमी

हिमाचल से सम्बन्धित पुस्तकों को भी खरीद के लिए विचाराधीन लाया जा सकता है।

3. **साहित्य/कला/संस्कृति सम्बन्धी लघु पत्र-पत्रिकाओं को अनुदान**

इस योजना के अन्तर्गत 32 पृष्ठ की सामग्री से युक्त साहित्य/कला/संस्कृति सम्बन्धी ऐसी लघु पत्रिकाओं को प्रकाशनार्थ अनुदान दिया जाता है, जिनके कम से कम चार अंक त्रैमासिक होने की स्थिति में तथा दो अंक अनियमित कालीन होने की स्थिति में प्रकाशित हो चुके हों। पहाड़ी तथा संस्कृत में प्रकाशित मासिक पत्रिकाएं भी इस योजना के अन्तर्गत विचाराधीन लाई जा सकती हैं। प्रकाशित पत्रिका के गत चार अंकों की चार-चार प्रतियां प्रार्थनापत्र के साथ भेजना आवश्यक है।

पूर्ण विवरण तथा निर्धारित प्रपत्र प्राप्त करने के लिए अकादमी कार्यालय, संगरमल भवन, क्लिफ-एण्ड-एस्टेट, शिमला-1 से सम्पर्क करें।

सचिव

दूरभाष : 6330/4993

●

मुखपृष्ठ : पांव धुलवाती नायिका
अन्तिम पृष्ठ : श्रीकृष्ण को अनिरुद्ध की कथा सुनाते नारद
कलाकार : ओम सुजानपुरी
पारदर्शियां : अकादमी संग्रह।

HAACL पंजीकरण संख्या-आर.एन. 28271/75

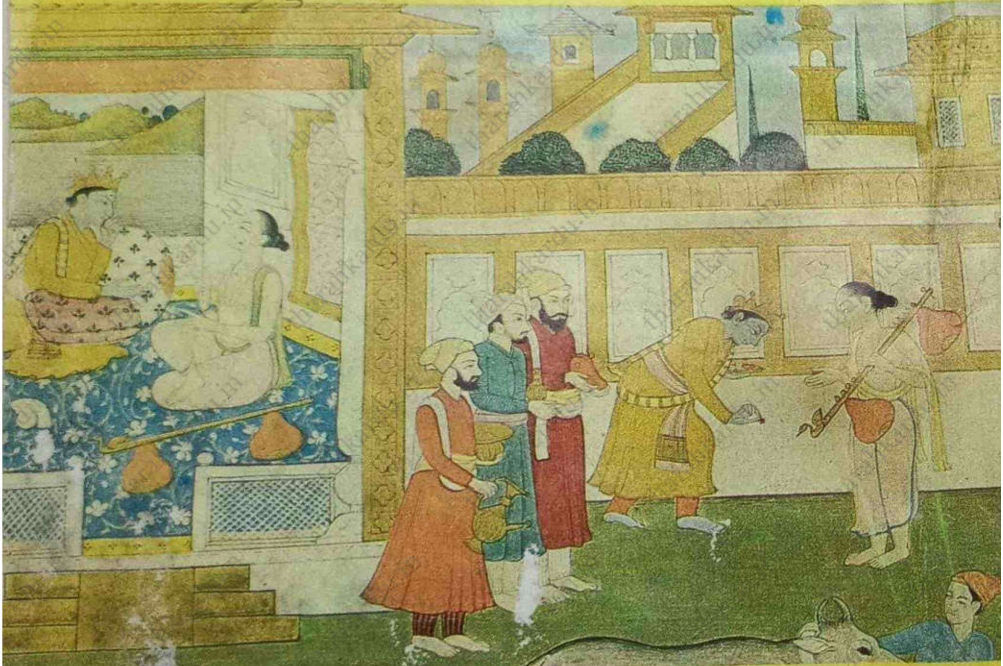

ग प्रेस 10 लोअर बाज़ार शिमला-1 □ दूरभाष : 3452

tharahkardu.in